www.thearyasamaj.org

स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-8 * अंक-3 * मुम्बई * मार्च-2017 * मूल्य-रु.9/-

आर्य मुसाफिर पं. लेखराम

विद्या देवी (भगतसिंह की माँ)

रल्ली देवी (सुखदेव की माँ)

शहीद सुखदेव

शहीद सरदार भगतसिंह

शहीद शिवराम राजगु

आर्य पुरोहित सभा मुंबई का 13वाँ वार्षिक महोत्सव कुछ चित्र

प्रवचन करते हुए डॉ. वागीश आचार्य

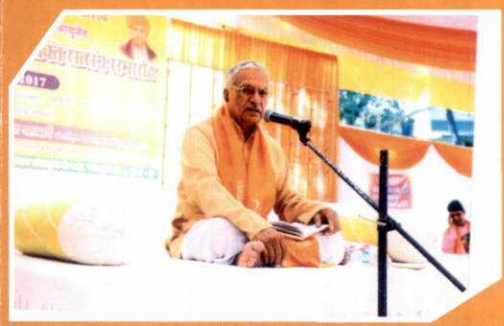

इक्कीस कुण्डीय यज्ञ करवाते हुए यज्ञ ब्रह्मा डॉ. सोमदेव शास्त्री

विशेष आमंत्रित अतिथियों के साथ पुरोहित सभा के पदाधिकारी एवं अन्य पुरोहित गण

अनेक यज्ञ कुण्डों पर यज्ञ करते हुए यजमान गण

www.thearyasamaj.org

प्रभु प्राप्ति के लिए विद्वान व संयमी से ज्ञान आवश्यक

डा. अशोक आर्य

मानव सदा ही प्रभु की शरण में रहना चाहता है किन्तु वह उपाय नहीं करता जो, प्रभू शरण पाने के अभिलाषी के लिए आवश्यक होते हैं। यदि हम प्रभु की शरण में रहना चाहते हैं तो हमारी प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक यत्न बुद्धि को पाने के उद्देश्य से होना चाहिये। दूसरे हम सदा ज्ञानी, विद्वान लोगों से प्रेरणा लेते रहें तथा हम सदा उन लोगों के समीप रहें, जो विद्वान हों, संयमी हों, ज्ञानी हों। एसे लोगों के समीप रहते हुये हम उनसे ज्ञान प्राप्त करते रहें। इस बात को ही यह मन्त्र अपने उपदेश में हमें बता रहा है। मन्त्र हमें इस प्रकार उपदेश कर रहा है:-

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
उप ब्रह्माणि वाघतः ।। ऋग्वेद १.३.५।।

इस मन्त्र में चार बातों की ओर संकेत किया गया है:=

१. इन्द्रियां वश में हों

जीव ने विगत मन्त्र में जो परमपिता प्रमात्मा से जो प्रार्थना की थी उस का उत्तर देते हुये पिता इस मन्त्र में हमें उपदेश कर रहे हैं कि हे इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव! हे इन्द्रियों को अपने वश में कर लेने वाले जीव। अर्थात प्रभु उस जीवन को सम्बोधन कर रहे हैं, जिसने अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया है। उस पिता का एक नियम है कि वह पिता उसे ही अपने समीप बैठने की अनुमति देता है, उसे ही अपने समीप स्थान देता है, जो अपनी इन्द्रियों के आधीन न हो कर अपनी इन्द्रियों को अपने आधीन कर लेता है, जो इन्द्रियों की इच्छा के वश में नहीं रहता अपितु इन्द्रियां जिसके वश में होती है। अत: इन्द्रियों पर आधिपत्य पा लेने में सफ़ल रहने वाला जीव जब उस प्रभु को पुकारता है तो एसे जीव की प्रार्थना को प्रभु अवश्य ही स्वीकार करता है तथा जीव को कहता है कि हे इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाले जीव ! तु आ मेरे समीप आकर स्थान ले, मेरे समीप आ कर बैठ।

२. बुद्धि सूक्ष्म हो

हे जीव हे जीव! तूं अपने सब प्रयास, सब यत्न, सब कर्म बुद्धि को पाने के लिए, बुद्धि को बढाने के लिए ही करता है। तूं सदा बुद्धि से ही प्रेरित रहता है। बुद्धि सदा तुझे कुछ न कुछ प्रेरणा करती रहती है। तूं जितने भी कार्य करता है, वह सब तूं या तो बुद्धि से करता है अथवा तूं जो भी करता है, वह सब बुद्धि को पाने के यत्न स्वरूप करता है। तेरी बस प्रेरणाएं बुद्धि को पाने के लिए प्रेरित होती हैं। इतना ही नहीं तूं जितनी भी चेष्टाएं करता है, जितने भी यत्न करता है, जितना भी परिश्रम करता है, जितना भी प्रयास करता है, वह सब भी तूं बुद्धि को पाने के लिए ही करता है। तूं अपने इस यत्न को निरन्तर बनाए रख। तेरे इस यत्न से ही तेरी बुद्धि सूक्ष्म हो सकेगी, जिस बुद्धि के द्वारा तूं इस ब्रह्माण्ड में मेरी महिमा, मेरी सृष्टि को देख पाने में सफ़ल होगा।

३. उतम बुद्धि पाने का प्रयास

तेरे अन्दर जो यह तीव्र बुद्धि आई है, जो सूक्ष्म बुद्धि का स्रोत बह रहा है, वह तूंने अपने ब्रह्मचर्य काल में अपने ज्ञानी, विद्वान तथा सूक्ष्म बुद्धि से युक्त आचार्यों से, गुरुजनों से, प्रेरित हो कर एकत्र किया है। इतना ही नहीं तूं अब भी उत्तम बुद्धि को पाने के लिए अपनी अभिलाषा को बनाए हुए है। इस कारण तूं ने अब भी उत्तम विद्वान पुरूषों की शरण को नहीं छोडा है, सूक्ष्म बुद्धि से युक्त गुरुजनों के चरणों में ही रहने का यत्न कर रहा है अर्थात इतनी बुद्धि का स्वामी होने पर भी बुद्धि पाने का यत्न तूंने छोडा नहीं है अपितु अब भी तूं इसे पाने के लिये निरन्तर प्रयास में लगा है।

४. सोम रक्षक से मार्ग दर्शन

हे उत्तम बुद्धि के स्वामी जीव! तूं सोम का सम्पादन करने वाला है। तूं प्रतिक्षण अपने जीवन में ऐसे यत्न, यथा प्राणायाम, दण्ड, बैठक आदि में व्यस्त रहता है, जिन से सोम की तेरे शरीर में उत्पति होती ही रहती है। तूं ने अपना जीवन इतना संयमित व नियमित कर लिया है कि सोम का कभी तेरे शरीर में नाश हो ही नहीं सकता अपितु सोम तेरे शरीर में सदा ही रक्षित है। इतना ही नहीं तूं सदा ऐसे लोगों का, ऐसे विद्वानों का, ऐसे गुरुजनों का साथ पाने व सहयोग लेने के लिए, मार्ग-दर्शन पाने के लिए यत्नशील रहता है, जो सोम को अपने यत्न से अपने शरीर में उत्पन्न कर, उसकी रक्षा करते हैं। सोम रक्षण से वह मेधावी होते हैं। ऐसे मेधावी व्यक्ति के, एसे ज्ञान के भण्डारी के, ऐसे संयमी व्यक्ति के समीप रह कर तूं उससे ज्ञान रुपि बुद्धि को और भी मेधावी बनाने के लिए यत्न शील है।

डा. अशोक आर्य
१०४-शिप्रा अपार्टमेन्ट,
कौशाम्बी २०१०१० गाजियाबाद
चलभाष ०९७१८५२८०६८

विचार शक्ति का चमत्कार

(विचारों का बारिकी से निरीक्षण)

प्रिय पाठकों,

उठते बैठते, सोते जागते हम जो भी विचार करते हैं वह हमारे चरित्र का अविचल प्रमाण-पत्र है। क्यों कि यही विचार हमारे जीवन में यथार्थ में परिवर्तित होंगे। हम अकसर एक अच्छे विचार को लाने के लिए दूसरे अच्छे विचार को रोक देते हैं या उसी विचार के विरोधाभास में प्रवेश कर जाते हैं। जो विचार स्वाभाविक रूप से उठते हैं वह तीरकी तरह कार्य करते हैं और चित्त पर गहरा असर डालते हैं व तुरन्त प्रभावी भी होते हैं। जैसे बूंद बूंद से सागर बनता है वैसे ही छोटे छोटे विचार आगे चलकर ठोस हो जाते हैं व जीवन को मजबूत आधार शिला देते है। वर्तमान विचारों के आधार पर हमें पता चल सकता है कि हमारा भविष्य क्या है। सभी विचारों का प्रादुर्भाव हमारे अंत:करण में होता है विचारो की गंगोत्री है, स्त्रोत्र है। आइये जीवन में समस्या कहाँ आती है और उसका उपचार क्या है उस पर विचार करें।

१) विचारो में विरोधाभास, अज्ञात भय व असंतोष व्याप्त होना।

२) स्वं अपने आपका सबसे बड़ा शत्रु बन जाता एवं अपने आप से दूर भागने का प्रयास करते रहना। इसीलिए हमेशा अपने आप को अपने समक्ष रखते हुए अहंकार से रिक्त होते हुए कर्म करना।

३) बिना शर्त करना व माफ करना।

४) बिना शर्त प्रसन्न रहना, आनन्दित रहना भय मुक्त जीवन जीना। हम क्यों बिना कुन्ठाके, भय व असंतोष के जी नहीं सकते जब की जीवात्माका स्वाभाविक गुण आनन्दित रहना, वह हमेशा सुख की और अग्रसर होना चाहता है। इस पर पूरी चर्चा अगले अंक में करेंगे

५) निर्विचार व निर्विषय होना सच्चा ध्यान है।

शेष अगले अंक में। धन्यवाद।

राज कुमार भगवतीप्रसाद गुप्त
मंत्री, आर्य समाज वाशी

www.thearyasamaj.org

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ८ अंक ३ (मार्च - २०१७)

- दयानंदाब्द : १९३, विक्रम सम्वत् : २०७३
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११७

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
प्रभु प्राप्ति के लिए विद्वान व संयमी से ज्ञान ...	२
सम्पादकीय	३
स्वयं उसके भक्त बनो और अन्यों को बनाओ	४-५
टंकारा का तारा	५
महर्षि दयानन्दजी द्वारा प्रश्नोत्तर	६-७
भाग्य और पुरुषार्थ	८-९
ईर्ष्या और वैर की अग्नि बुझाओ!	१०
नित्यकर्म और मुक्ति विषय	११-१२
ऋग्वेद-सूक्ति-सुधा	१३
''वेदों में यज्ञ-चिकित्सा विज्ञान''	१४-१५
आर्य पथिक लेखराम	१५
शहीद दिवस	१६

सम्पादकीय

शहीद दिवस

दि. ६ मार्च १८९७ के दिन आर्य मुसाफिर पं. लेखराम की एक मतान्ध द्वारा हत्या कर दी गयी थी। इस दिन को आर्य समाज बलिदान दिवस के रूप में मनाता है। दि. २३ मार्च १९३१ के दिन ब्रिटीश हुकुमत द्वारा शहीद भगतसिंह, सुखदेव व राजगुरू को फांसी दी गयी। इस दिन को पूरा राष्ट्र शहीद दिवस के रूप में मनाता है।

अमर बलिदानी आर्य मुसाफिर पं. लेखराम व शहीद भगतसिंह, सुखदेव व राजगुरू के जीवन की घटनाओं पर दृष्टिपात करें तो उस समय की समस्या आज भी देश में यथावत् दिखायी देती है। इस अंक में दो घटनायें हमने रखीं हैं इस विषय वस्तु को समझाने के लिये। आर्य समाज का गौरवशाली इतिहास रहा है। आर्य समाज के समर्पित संन्यासी, विद्वान, कार्यकताओं ने आर्य समाज के प्रचार के लिये मिशनरी भावना से अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। अपने परिवार की भी परवाह नहीं की। किन्तु वर्तमान में हम देखते हैं कि आर्य समाज के आन्दोलन में ठहराव आ गया है। महर्षि के बताये धर्म एवं पुरूषार्थ के मार्ग को छोडकर हम वर्तमान स्थिति से अपने अपने स्वार्थ के कारणों से सिद्धान्तों से समझौते करते जा रहे हैं। पं. लेखराम ने अंतिम समय में यही कहा था कि तकरीर और तहरीर बन्द नहीं होनी चाहिए।

इसी तरह क्रान्तिकारियों के सपनों को देखो तो वे उस समय के साम्राज्यवादियों एवं पूंजीपतियों द्वारा असहाय जनता के शोषण के खिलाफ थे फिर चाहे वे तत्व ब्रिटीश हुकूमत में रहे हों या स्वदेशी पूंजीपति। क्रान्तिकारी इसी परिस्थिति के परिणामस्वरूप समाजवाद व साम्यवाद के प्रबल पोषक बनते जा रहे थे। इसीलिए तत्कालीन राजनेताओं ने उन्हें हिंसावारी कहते हुए आंदोलन से दूर रखने का प्रयास किया। वर्तमान में भी यही स्थिति है। आज देशभक्ति का मौसम तो है, शहीदों के नाम पर कार्यक्रम भी हैं किन्तु उनके सपने अधूरे हैं। भारत पूंजीपति राष्ट्रों व देश विदेश के पूंजीपतियों के हाथ की कठपुतली बनता जा रहा है। कुछ भावुक जनता देशभक्ति के नारों में ही अपने को धन्य समझ रही है। पूंजीपती उनकी भावना का व्यापारीकरण करके अपनी पूंजी बढ़ा रहे हैं। वास्तविक शहीदी दिवस तभी सार्थक होगा जब शहीदों के सपने साकार करने का प्रयास हम करेगें और अमर बलिदानी पं लेखराम का बलिदान तभी सार्थक होगा जब हम तकरीर और तहरीर पर जोर देते रहेंगे।

- संगीत आर्य
9323 573 892

www.thearyasamaj.org

स्वयं उसके भक्त बनो और अन्यों को बनाओ

आचार्य प्रियव्रत

नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे
विश्वं ह्यु ग्रि निचिकेषि द्रुग्धम्।
सहस्त्रमन्यान् प्र सुवामि साकं
शतं जीवाति शरदस्तवायम् ।।२।।

अर्थ- (उग्र) पापियों के लिए उग्र स्वभाववाले हे भगवन् आप **(विश्वम्)** सब प्रकार के **(द्रुग्धम्)** हमारे धर्माचरण के द्रोहों को-अपराधों को **(हि)** निश्चय से **(निचिकेषि)** भली-भाँति जानते हो। **(राजन्)** हे सब के राजा **(वरुण)** वरण करने योग्य और बचावेवाले भगवन्! **(मन्यवे)** पापियों के लिए क्रोधमूर्ति **(ते)** आपको **(नमः)** मेरा नमस्कार **(अस्तु)** हो, **(साकम्)** अपने साथ ही, मैं **(सहस्त्रम्)** सहस्त्रों **(अन्यान्)** औरों को भी **(प्रसुवामि)** प्रेरणा करता हूँ (जिससे वे भी आपको नमस्कार करें)। **(अयम्)** यह **(तव)** तेरा उपासक **(शतम्)** सौ **(शरदः)** वर्ष तक **(जीवाति)** जीवित रह सके।

गत मन्त्र में बताया गया था कि उपासक प्रभु के वेदज्ञान को सीखकर और उसके अनुसार अपने आचरण ढालकर भगवान् के क्रोध से बच सकता है, परन्तु हमारा यह देहज्ञान सुखा वेद-ज्ञान नहीं रहना चाहिए। यदि हम इस वेदज्ञान को अपने लिए सचमुच मङ्गलकारी बनाना चाहते हैं तो इसमें प्रभु-भक्ति का पुढ लगा रहना चाहिए वेदज्ञान के साथ-साथ हमारी मनोवृत्ति प्रेम में भरकर प्रभु के प्रति नमस्कार और झुकने की भावनाओ से भरी होनी चाहिए। हमारे अन्दर ज्ञान और भक्ति का पूरा सामञ्जस्य रहना चाहिए। तभी हमारा जीवन आदर्श बन सकेगा। खाली ज्ञान का जीवन हमें निष्पाप भले ही बना दे, परंन्तु प्रभु-भक्ति के बिना उसमें रस उत्पन्न नहीं हो सकता, मिठास नहीं आ सकती । प्रभुके आगे झुकने की प्रेममयी वृत्ति ही हमारे जीवन में मिठास भर सकती है। ज्ञान के बिना अकेली भक्ति अन्धी होती है और भक्ति के बिना अकेला ज्ञान सुखा रहता है। ज्ञान और भक्ति के समुच्चय से जीवन असल में जीवन बनता है। इसी अभिप्राय से प्रस्तुत मन्त्र में कहा गया है कि हे राजा वरुण! मैं उपासक आपको नमस्कार करता हूँ- आपके प्रेम में भरकर झुकता हूँ।

यदि हम अपने-आपको हमारे पापकर्मों के अनुसार मिलनेवाले दुःख से बचाना चाहते हैं तो हमें राजा वरुण का हम पर गिरनेवाला मन्यु, क्रोध किसी तरह रोकना चाहिए। भगवान् के मन्यु को रोकने का एक ही उपाय है और वह उपाय गत मन्त्र और प्रस्तुत मन्त्र में इस प्रकार बताया गया है कि वेदज्ञान सीखकर तथा वरुण भगवान् की भक्ति करके हमें अपने-आपको निष्पाप बना लेना चाहिए। वेदज्ञान तो हमें सीधे रूप में ही यह बताएगा कि हमारा क्या कर्तव्य है और क्या नहीं। भगवान् की भक्ति भी हमें प्रकारान्तर से कर्तव्य का ही उपदेश करेगी। हम भक्ति के समय प्रेम में भरकर जब भगवान् के उत्कृष्ट गुणों का कीर्तन करेंगे और उनके आगे अपना मस्तक झुकाएँगे तब हमें स्पष्ट ही यह प्रतीति होगी कि भगवान् के उत्कृष्ट गुण तो ग्रहण करने योग्य हैं और इनके विरोधी हमारे अवगुण छोड़ने के योग्य हैं। इस प्रकार वेदज्ञान और प्रभु-भक्ति हमें एक ही जगह ले-जाते हैं। इन दोनों का उद्देश्य वस्तुतः एक ही है। आदर्श प्रभुभक्त का चरित्र वैसा ही होगा जैसाकि एक आदर्श वेदज्ञ का होना चाहिए और आदर्श वेदज्ञ का चरित्र वैसा ही होगा जैसाकि आदर्श प्रभु-भक्त का होना चाहिए। इसी अभिप्राय को व्यक्त करने के लिए गत मन्त्र में वेद के लिए शब्द ''ब्रह्म'' का प्रयोग किया गया था जो कि परमात्मा का भी वाचक है। वेद-ब्रह्म और पर-ब्रह्म दोनों का ही चिन्तन और मनन हमें निष्पापता की ओर ले- जाता है। इनमें से किसी एक का चिन्तन दूसरे के चिन्तन का सहायक है, विरोधी नहीं, इसलिए हमें वेद और वेदोपलक्षित अन्य सत्य शास्त्रों का स्वाध्याय और प्रभु-भक्ति-इन दोनों का ही सहारा लेकर अपने-आपको निष्पाप बनाने की राह पर चल पड़ना चाहिए। वेद और वेदोपलक्षित शास्त्रों का स्वाध्याय जहाँ इस प्रकार पाप से बचाएगा वहाँ वेद के प्रदाता प्रभु की भक्ति हमें प्रकारान्तर से कर्तव्य का मार्ग सुझाकर पाप से बचाने के साथ-साथ हमारे अन्दर नम्रता की भावना दृढ़ करके हमारे जीवन को रसीला बनाने का काम भी करेगी। इस मार्ग के अवलम्बन के अतिरिक्त पाप से और प्रभु के मन्यु से बचने का दूसरा उपाय नहीं है। अपने आत्मा को निष्पाप न बनाकर केवल ऊपर-ऊपर से भगवान् की प्रार्थना करने से और यह कहते रहने से कि महाराज ''हमें क्षमा करो, हमें क्षमा करो,'' भगवान् का मन्यु नहीं उतर सकता, क्योंकि वह आवेश में भरकर किया हुआ सामान्य क्रोध नहीं है। वह तो विचार कर शान्त-मुद्रा के साथ किया हुआ मन्युनामक क्रोध है जो अपने उद्देश्य की पूर्ति से पहले नहीं उतर सकता। भगवान् के मन्यु का उद्देश्य हमें पवित्र बनाना है, जब तक हम पापाचरण त्यागकर सचमुच पवित्र नहीं बन जाएँगे, तब तक भगवान् का मन्यु भी हमपर गिरना बन्द नहीं हो सकता। इसी भाव को स्पष्ट करने के लिए प्रस्तुत मन्त्र में रूपकालङ्कार से भगवान् को मन्यु कह दिया है- प्रभु को ही मन्युरूप बना दिया है। जिसकी व्यञ्जना यह है कि मन्युवाले व्यक्ति को तो हम उससे क्षमा याचना आदि करके किसी समय तैयार भी कर सकते हैं कि वह हमपर अपने मन्यु न गिराए, परन्तु जो हैं ही मन्युरूप, जो मन्यु से भिन्न है ही कुछ नहीं, उससे भला मन्यु शान्त करने के लिए क्या क्षमा-प्रार्थना की जाए? मन्युवाला तो अपने मन्यु को शान्त भी कर ले, परन्तु मन्यु स्वयं अपने-आपको शान्त कैसे कर सकेगा? भगवान् के इस आलङ्कारिक वर्णन का तात्पर्य केवल इतना ही है कि हमारे निष्पाप बनने से पहले भगवान् का मन्यु हमपर गिरना बन्द नहीं हो सकता।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि वरुण का मन्यु हमें निष्पाप किस प्रकार बनाएगा। इसका समाधान यह है कि हमारे विभिन्न पापों के कारण वरूण का मन्यु हमपर गिरता है। इसके फलस्वरूप हमें भाँति-भाँति के दुःख भोगने पड़ते हैं। जब हम अपने और अपने आस-पास के प्राणियों को मिल रहे भाँति-भाँति के कष्टों पर विचार करेंगे तब हमारे मन में विचार उठेगा कि भगवान् तो न्यायकारी हैं इसलिए वे किसी को भी यों ही, अकारण कोई दुःख नहीं दे सकते। हम सबको जो दुःख मिल रहे हैं, उनका कोई कारण अवश्य होगा। वह कारण हमारे दुष्कर्म ही हो सकते हैं, इसलिए हमें जो दुःख मिल रहे हैं, वे हमारे दुष्कर्मों के कारण ही हमें मिल रहे हैं। हम नहीं कह सकते कि हमारे कौन से दुष्कर्म का फल हमारा कौन-सा दुःख है, इसलिए

www.thearyasamaj.org

अच्छा यही है कि हम अपने सभी दुष्कर्म त्याग दें। जब हममें कोई भी दुष्कर्म न रह जाएगा तब हमें कोई भी दुःख नहीं मिल सकेगा। इस विचार के फलस्वरूप हम पापाचरण को छोड़कर निष्पाप बन जाते हैं। इस प्रकार भगवान् का मन्यु हमें निष्पाप बनाने में सहायक होता है।

जब तक हम पापाचरण से सर्वथा मुक्त नहीं हो जाते, तब तक भगवान् का मन्यु हमपर गिरना बन्द नहीं हो सकता, क्योंकि हमारा कोई भी पापाचरण भगवान् से छिपा नहीं रहता। वह हमारे सब प्रकार के द्रुग्ध, अर्थात् हमारे द्वारा होनेवाले धर्माचरण के द्रोहों को-अधर्माचरणों को भली-भाँति जानते रहते हैं। किसी पापाचारी के मन में यह भूल नहीं रहनी चाहिए कि उसका कोई ऐसा भी पापाचरण हो सकता है, जिसे राजा वरूण न जान पाते हों। नहीं, वे हमारे एक एक पाप को देखते रहते हैं, इसलिए मन्त्र में कहा है कि हे उग्र! तुम हमारे सब प्रकार के द्रुग्धों को जानते हो।

मन्त्र के प्रथम चरण में उपासक ने कहा था कि हे महाराज! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, आपके आगे झुकता हूँ, आपकी भक्ति करता हूँ, परन्तु एक सच्चे उपासक को केवल इतने से ही सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए कि वह स्वयं प्रभु का भक्त है- स्वयं अपना जीवन धार्मिक रखता है। उसे अपने चारों ओर के लोगों को भी प्रभु-भक्त, धार्मिक बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। इसी अभिप्राय से मन्त्र में कहा है कि ''मैं सहस्रों औरों को भी प्रेरणा करता हूँ कि वे आपका नमस्कार करें, आपकी भक्ति करें।'' इस प्रकार मन्त्र के इस वाक्य की यह स्पष्ट सूचना है कि वैदिक उपासक का जीवन संसार से पृथक् होकर वन-पर्वत की किसी एकान्त गुफा में बैठे रहनेवाले क्रियाहीन तापस का नहीं होना चाहिए। प्रत्युत उसका जीवन संसार में रहकर अपनी भक्ति और धार्मिक पवित्रता का सौरभ मनुष्यों तक पहुँचानेवाले क्रियाशील प्रचारक का होना चाहिए।

जो लोग इस प्रकार का ज्ञान और भक्तिमय पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं और दूसरों को भी ऐसा पवित्र जीवन व्यतीत करने में सहायता पहुँचाते हैं। उन्हें जहाँ आध्यात्मिक लाभ होते हैं वहाँ अनेक सांसारिक लाभ भी प्राप्त होते हैं। इसे सूचित करने के लिए मन्त्र में कहा है कि ''यह आपका उपासक सौ वर्ष तक जीता रह सके।'' ऐसे उपासक की सौ वर्ष की लम्बी आयु होती है, ऐसी स्पष्ट सूचना इस वाक्य से निकलती है, फिर यह दीर्घ आयु की प्राप्ति अन्य सांसारिक लाभों का उपलक्षण मात्र है। दीर्घ आयु के सहायक दुग्ध-फल आदि पौष्टिक भोजन, स्वच्छ वस्त्र, स्वास्थ्यप्रद गृह आदि अनेक सांसारिक सुखों का ग्रहण भी इस दीर्घ आयु की प्राप्ति के वर्णन में समझना चाहिए। इस प्रकार इस वर्णन से यह भी स्पष्ट सूचना मिलती है कि वैदिक भक्तिमार्ग में सांसारिक सुखों को सर्वथा त्याज्य नहीं समझा जाता है। उन्हें भी उपादेय बताया गया है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि ये सांसारिक सुख ब्रह्ममय पवित्र जीवन के सहकारी और उससे ही निकलनेवाले होने चाहिएँ, उस जीवन के विरोधी नहीं होने चाहिएँ।

हे मेरे आत्मन्! तू अपना जीवन प्रभु-नमस्कार का, प्रभु के आगे झुकने का, प्रभु की भक्ति का बना और अपने चारों ओर रहनेवाले सहस्त्रों नर-नारियों के जीवन को भी प्रभु-भक्ति की दीक्षा में दीक्षित कर। यह राह पर चलने से तुझ पर प्रभु की कृपा बरसेगी।

टंकारा का तारा

तर्ज़ : दो रोज में वो प्यार का

ललित साहनी

सौ युग में जो ना हो सका दयानन्द कर गया
उद्धार करने आया था उद्धार कर गया।।
।। सौ युगा ।।

टंकारा की पुनीत धरा पर लिया जनम
इक ऐसी लहर छाई के हर्षा सभी का मन (२)
समझा पिता, के और इक, शिव भक्त मिल गया।।
।। उद्धार।।

शिव मूर्ति के नमन में ऋषि का लगा न मन
इक सच्ची शिव-लगन से जागी हृदय अगन (२)
इस अगन की लगन से ही भवपार तर गया।।
।। उद्धार।।

शिवरात्री को बनाया मन दर्शन की चाह का
शिव ही बना शिवक बालक की राह का (२)
मूषक ने दिया शक तो ये दर्शक सम्भल गया।।
।। उद्धार।।

मृत्यु हुई बहन चचा की तो उठा वैराग
अमरत्व ढूँढ़ने को शिशु घर से गया भाग (२)
आलय जो छूटा शिवका, शिवालय बदल गया।।
।। उद्धार।।

बस इतनी सी थी दासता टंकारा ग्राम की
इस दिन खुशी भरा था तो कई गम की शाम थीं (३)
आँखों का तारा पल में ही खुशियाँ निकल गया।।
।। उद्धार।।

इक घर के अन्धेरे से भी लाखों जले चिराग
इक देवजुष्ट वाणी से इक जुट बना समाज
तन मन के बीमारों की दवादारु कर गया।।
।। उद्धार।।

लेकर सहारा वेदों का ज्ञानामृत पिये
सत्य ज्ञान के प्रचार में जहर पी के भी जिये (२)
हर वैर द्वेष का जहर अमृत में ढ़ल गया।।
।। उद्धार।।

जितने सुकर्म तुमने किये गिन सके ना हम
सब मिल के भी गिने तो लाख जन्म होंगे कम (२)
हर बार लिखते लिखते 'ललित' हारकर गया।।
।। उद्धार।।

(शिवक)= काँटा, शूल, (मूषक)=चूहा, (देवजुष्ट)= देवताओं द्वारा सेवित

www.thearyasamaj.org

महर्षि दयानन्दजी द्वारा प्रश्नोत्तर

स्वामी सत्यानन्द

पौराणिक पण्डितों ने स्वामीजी के पास पच्चीस प्रश्न भेजे। उनका उत्तर महाराज ने आर्य पुरुषों को लिखा दिया। वे प्रश्नोत्तर ये थे-

प्रश्न १- वेदादि शास्त्रों में संन्यासियों के धर्म ये बताए हैं- ज्ञान पूर्वक, वेदानुकूल, शास्त्रोक्त रीति से पक्षपात, शोक, वैर, हठ और दुराग्रह का त्यागना। स्वार्थ साधन, निन्दा-स्तुति और मानापमान आदि दोषों को छोड़ना। संन्यासियों का धर्म है कि सत्यासत्य की आप परीक्षा करें। सर्वत्र विचरते हुए लोगों से असत्य छुड़ावें और सत्य ग्रहण करायें। जिससे उनकी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति हो और वे साधनों सहित विद्या लाभ कर अपने पुरुषार्थ से व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों को उपलब्ध करें। लोकों से दुराचार हटाना संन्यासियों का धर्म है।

हर्ष-शोक से रहित संन्यासी जन यदि यानारूढ़ हों तो इसमें कोई भी दोष नही हैं।

प्रश्न २ यदि आपके मत में क्षमा नहीं मानी जाती तो मनुस्मृति के प्रायश्चितों का क्या फल है? ईश्वर की दयालुता का क्या प्रयोजन है? यदि मनुष्य स्वतन्त्रता से आगन्तुक पापों से बचा रहे तो ईश्वर की क्षमाशीलता किस काम आयगी?

उत्तर-हमारा मत वेदोक्त है, कोई कपोल कल्पित नहीं है वेदों में कहीं भी किये पापों की क्षमा नहीं लिखी! पापों की क्षमा मानना युक्ति सङ्गत भी नहीं है। उन मनुष्यों पर शोक होता है जिन्हें प्रश्न करने तो नहीं आते परन्तु वे पाँचों में सबार बनने की चेष्टा करते हैं।

क्षमा और प्रायश्चित्त का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। प्रायश्चित कोई सुख भोग का नाम नहीं है जैसे कारावास में अपराधी मनुष्य चोरी आदि कर्मों का फल भोग लेता है ऐसे ही प्रायश्चित में पाप-फल भोगा जाता है। अनेक नास्तिक जन ईश्वर का खण्डन करते हैं। दु:खों में और दुर्भिक्षादि में मनुष्य परमात्मा को गालियाँ तक देने लग जाते है! वह सब सहन कर लेता और अपनी कृपा का परित्याग नहीं करता। यही उसकी क्षमा और दया है। न्यायकारी, यदि किये कर्मों को क्षमा कर दे तो वह अन्यागकारी हो जाता है। परमेश्वरी अपने स्वाभाविक गुण के विरुद्ध कभी कुछ नहीं करता। जैसे न्यायाधीश पापियों को विद्या और शिक्षा द्वारा पाप से पृथक् कर प्रतिष्ठा और दण्ड से शुद्ध और सुखी कर देता है, ऐसे ही ईश्वर का न्याय समझना चाहिए।

प्रश्न ३- यदि आपके मत में तत्त्वों के परमाणु नित्य हैं और कारण का गुण कार्य में रहता है तो यह बताइए कि सूक्ष्म परमाणुओं से स्थूल सृष्टि कैसे हो गई?

उत्तर- जो परम सूक्ष्म है उसी को परमाणु और अव्याकृत आदि नामों से पुकारा जाता है। ऐसे परमाणु अनादि और सत्य हैं। कारण के जो गुण समवायसम्बन्ध से हैं वे कारण में नित्य हैं और कार्यावस्था में भी नित्य बने रहते हैं। परमाणुओं में संयोग और विभाग का गुण भी नित्य है। इसलिए इनके मिलने और बिछड़ने से इनके स्वरूप में अनित्यता नहीं आती। परमाणुओं में गुरुत्व और लघुत्व दोनों का सामर्थ्य भी नित्य है। गुण गुणी का समवाय सम्बन्ध है।

प्रश्न-४ मनुष्य और ईश्वर का परस्पर क्या सम्बन्ध है? ज्ञान से मनुष्य क्या ईश्वर बन सकता है? जीवात्मा और परमात्मा में क्या सम्बन्ध है। क्या वे दोनों नित्य हैं? यदि दोनों चेतन हैं तो जीव ईश्वराधीन है कि नहीं? अधीन है तो क्यो?

उत्तर-मनुष्य और ईश्वर का राजा-प्रजा, स्वामी-सेवक आदि का सम्बन्ध है। अल्पज्ञ होने से जीव ईश्वर नहीं हो सकता। जीव और ईश्वर में व्याप्य व्यापक आदि सम्बन्ध हैं। जीवात्मा सदा ईश्वराधीन रहता है; परन्तु कर्म करने में वह स्वतन्त्र है और फल भोगने में ही पराधीन है। ईश्वर का सामर्थ्य अनन्त है और जीव का अल्प, इसलिए जीव का परमात्मा के अधीन होना आवश्यक है।

प्रश्न ५ क्या आप संसार की रचना और प्रलय मानते हैं? प्रथम सृष्टि में एक मनुष्य उत्पन्न हुआ था अथवा अनेक? आदि में जब उनके कर्म समान थे तो परमेश्वर ने कुछ एक मनुष्यों ही को वेद ज्ञान क्यों दिया ऐसा करने से उस में पक्षपात का दोष आ जाता है?

उत्तर-सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय हम मानते हैं। ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव अनादि हैं। इसलिए सृष्टि भी प्रवाह से अनादि है। यदि ऐसा न माना जाय तो रचना से पूर्व ईश्वर को निकम्मा मानना होगा। परमेश्वर की तरह प्रकृति और जीव भी अनादि हैं। जैसे इस कल्प की सृष्टि की आदि में अनेक स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए, वैसे ही पूर्व कल्पों में होते रहे और आगामी कल्पों में होते रहेंगे। जीवों के कर्म भी अनादि हैं। जिन चार आत्माओं में परमात्मा ने वेद का प्रकाश किया उनके सदृश्य अथवा उनसे अधिक किसी के भी पुण्य नहीं थे। इसलिए परमात्मा में पक्षपात का दोष नहीं आता।

प्रश्न ६ - आपके मातानुसार कर्म-फल यथाकर्म न्यूनाधिक होता है तो मनुष्य स्वतन्त्र कैसे हुआ? परमेश्वर का जैसा ज्ञान है जीव वैसा ही कर्म करेगा इसलिए स्वतन्त्रं न रहा।

उत्तर-कर्म-फल न्यूनाधिक कभी नहीं होते। जिसने जैसा और जितना कर्म किया हो उसे वैसा और उतना ही फल न दिया जाये तो अन्याय हो जाता है। हे आर्य जनो! ईश्वर में भूत-भविष्यत् काल का सम्बन्ध नहीं है। ईश्वर का ज्ञान सदा एक रस है। जैसे ईश्वर अपने ज्ञान में स्वतन्त्र है, वैसे ही जीव कर्मों के करने में स्वतन्त्र है, परन्तु फल भोगने में परतन्त्र है।

प्रश्न ७ - मोक्ष क्या पदार्थ है?

उत्तर- सब अशुभ कर्मों से रहित होकर केवल शुभ ही कर्म करना जीवन- भक्ति है, और दु:ख मात्र से छूटकर आनन्दपूर्वक परमेश्वर में रहना मुक्ति है।

प्रश्न ८ - धन बढ़ाना, कला-कौशल द्वारा लोगों को सुखी करना और रोगग्रस्त पापी मनुष्य को औषधादि देना धर्म है अथवा अधर्म?

उत्तर-न्याय से धन बढ़ाने, कला-कौशल निकालने और औषध आदि बनाने में धर्म है। यदि कोई मनुष्य ऊपर कहे कर्म अन्याय से करे तो अधर्म है। पापी मनुष्य को रोग से छुड़ाकर धर्म-कार्यों में लगाना धर्म है।

प्रश्न ९ - मांस खाने में पाप है अथवा नहीं? यदि पाप है तो वेद और आप्त ग्रन्थों में, यज्ञ में हिंसा का विधान है और भक्षणार्थ मारना क्यों लिखा है?

उत्तर-मांस खाने में पाप है। वेदों तथा आप्त ग्रन्थों में यज्ञादि में हिंसा करना कहीं भी नहीं लिखा। गोमेध आदि शब्दों के अर्थ बामियों ने बिगाड़े हैं। इनका वास्तविक अर्थ हिंसा-परक नहीं है। जैसे डाकू आदि दुष्ट जनों को राजा लोग मारते हैं ऐसे ही हानिकारक पशुओं को मारना भी लिखा है, परन्तु

www.thearyasamaj.org

खाने का लेख नहीं है। आजकल तो बामियों ने मिथ्या श्लोक बनाकर गौ-मांस तक खाना भी बताया है! जैसे मनुस्मृति में इन धूर्तो का मिलाया हुआ लेख है कि गो-मांस का पिण्ड देना चाहिए। क्या कोई पुरुष ऐसे भ्रष्ट वचन मान सकता है?

प्रश्न १०- जीव का क्या लक्षण है?

उत्तर-जीव के लक्षण न्याय-शास्त्र में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख और ज्ञान लिखे हैं।

प्रश्न ११- सूक्ष्म यन्त्रों से ज्ञान होता है कि जल में अनन्त जीव हैं। इस अवस्था में क्या जल-पान करना चाहिए?

उत्तर-जब पात्र और पात्रस्थल जल अन्त वाले हैं तो उनमें अनन्त जीव नहीं समा सकते। जल को आँख से देखकर और वस्त्र से छान कर पीना चाहिए।

प्रश्न १२- पुरुष के लिये बहुत स्त्रियों से विवाह करने का कहाँ निषेध है? यदि है तो धर्म-शास्त्र में यह क्यों आता है कि यदि एक पुरूष के अनेक स्त्रियाँ हों और उनमें से एक पुत्रवती हो जाये तो सब पुत्रवालियाँ समझी जायें?

उत्तर-वेद में बहु विवाह का निषेध हैं। संसार में सभी मनुष्य अच्छे नहीं हो सकते। इसलिये यदि कोई अधर्मी पुरुष अनेक स्त्रियों से विवाह कर ले तो उसकी स्त्रियों में परस्पर विरोध अवश्य होगा। यदि एक के पुत्र हो तो दूसरी उसे विष आदि से मार न दें, इसलिये धर्म-शास्त्र में लिखा है कि उसे अपना पुत्र ही समझें।

प्रश्न १३- ज्योतिष-शास्त्र के फलित-भाग को क्या आप मानते हैं? क्या भृगु- संहिता आप्त ग्रन्थ है?

उत्तर-हम ज्योतिष-शास्त्र के फलित-भाग को नहीं मानते, किन्तु गणित भाग को मानते हैं। ज्योतिष के जितने सिद्धान्त ग्रन्थ हैं उनमें फलित का लेश भी नहीं है। भृगु-संहिता में गणित है इसलिये उसे हम मानते हैं। ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में भूत-भविष्यत् काल का ज्ञान नहीं लिखा है और न ही उनमें मनुष्य के सुख-दुःख के ज्ञान का लेख हे।

प्रश्न १४ - ज्योतिष-सिद्धान्त में आप किस ग्रन्थ को सिद्धान्त-ग्रन्थ स्वीकार करते हैं?

उत्तर-जितने भी वेदानुकूल ग्रन्थ हैं उन सबको हम आप्त ग्रन्थ मानते हैं।

प्रश्न १५ - क्या आप पृथ्वी पर सुख-दुःख, विद्या, धर्म और मनुष्य संख्या की न्यूनता और अधिकता मानते हैं? यदि मानते हैं तो क्या पहले इनकी वृद्धि थी? अब है? अथवा आगे होगी?

उत्तर-हम पृथ्वी पर सुखादि की वृद्धि सापेक्ष होने से अनित्य मानते हैं और मध्यम अवस्था में बराबर स्वीकार करते हैं।

प्रश्न १६- धर्म का क्या लक्षण है? ईश्वरकृत सनातन है अथवा मनुष्यकृत?

उत्तर-धर्म का लक्षण पक्षपात रहित न्याय है और सत्य का ग्रहण तथा असत्य का परित्याग है। वह वेद प्रतिपादित और ईश्वरकृत सनातन है।

प्रश्न १७ - यदि कोई ईसाई, मुसलमान आपके मत में दृढ़ विश्वासी हो जाये तो क्या आपके अनुयायी उसे अपने में मिला लेंगे और उसका बनाया भोजन खा लेंगे?

उत्तर-वेद ही हमारा मत है। बड़े शोक और अन्धेर की बात है कि आप लोगों ने केबल खान-पान, शौच-स्त्रान, वेश भूषा और उठने बैठने आदि को ही धर्म मान रखा है! ये तो अपने अपने देशों की रीतियाँ हैं।

प्रश्न १८- क्या आपके मत में ज्ञान के बिना भी मुक्ति हो जाती है?

उत्तर-परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञान के बिना किसी की मुक्ति नहीं होती। जो धर्म पर आरूढ़ होगा उसे ज्ञान भी अवश्य होगा।

प्रश्न १९- श्राद्ध करना क्या शास्त्रानुसार है? शास्त्रानुकूल नहीं तो पितृ-कर्म का क्या अर्थ है? क्या मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में इसका विधान मिलता है?

उत्तर-जीवित पितरों को श्रद्धा से, सेवा से, पुरुषार्थ से और पदार्थों से तृप्त करना श्राद्ध है। ऐसे ही श्राद्ध का विधान वेद में मिलता है। मनु-स्मृति में भी जो लेख वेदानुकूल हैं वही मानने योग्य हैं।

प्रश्न २० - कोई मनुष्य यह समझकर आत्मघात कर ले कि मैं पापों से नहीं बच सकता तो क्या ऐसा करने में कोई पाप होता है?

उत्तर-आत्मघात करने में पाप ही होता हैं! पापाचरण के फल भोगे बिना कोई मनुष्य पापों से नहीं बच सकता।

प्रश्न २१- जीवात्मा असंख्य हैं अथवा संख्या सहित? क्या कर्म वश मनुष्य पशु और वृक्षादि को योनियों में जा सकता है।

उत्तर- ईश्वर के ज्ञान में जीवों की संख्या है, परन्तु अल्पज्ञान में वे असंख्य हैं। पाप-कर्मों की अधिकता से जीव, पशुओं और वनस्पतियों की योनियों में जाता है।

प्रश्न २२- क्या विवाह करना उचित है? सन्तानप्राप्ति से किसको पाप लगता है?

उत्तर- जो जन पूर्ण विद्वान् और जितेन्द्रिय होकर सबका उपकार करना चाहें उन्हें तो विवाह करना उचित नहीं है। जो मनुष्य ऐसा नहीं कर सकते उन्हें विवाह करना चाहिए; वेदानुसार विवाह करके ऋतुगामी रहते जो सन्तान प्राप्त हो उसमें कोई दोष नहीं है। व्यभिचार अन्याय है। इसलिये उससे उत्पन्न हुई सन्तान दोषयुक्त होती है।

प्रश्न २३- क्या अपने सगोत्र में विवाह सम्बन्ध करना दूषित है। यदि है तो क्यों? क्या सृष्टि की आदि में ऐसा हुआ था?

उत्तर-सगोत्र में विवाह करने से शरीर और आत्मा की यथावत् उन्नति नहीं होती और बल तथा प्रेम भी टीक-टीक नहीं बढ़ता। इन दोषों के कारण भिन्न गोत्र में विवाह करना उचित है सृष्टि की आदि में तो गोत्र ही नहीं थे। इसलिये उस समय का प्रश्न करना व्यर्थ प्रयास है।

प्रश्न २४- गायत्री के जाप से कोई फल भी होता है कि नहीं? यदि होता है तो क्यों?

उत्तर-वेद में गायत्री के अर्थानुसार आचरण करना लिखा है इसलिये वैदिक विधि से गायत्री का जप किया जाए तो उत्तम फल प्राप्त होता है। किया हुआ अच्छा बुरा कोई भी कर्म निष्फल नहीं जाता।

प्रश्न २५- धर्माधर्म मनुष्य के अन्तरङ्ग भावों से सम्बन्ध रखता है अथवा बाहर के परिणामों से? यदि कोई मनुष्य किसी डूबते मनुष्य को बचाने के लिये नदी में कूद पड़े और आप भी डूब जाये तो क्या उसे आत्मघात का पाप लगेगा?

उत्तर-धर्माधर्म मनुष्य की वहिरङ्ग और अन्तरङ्ग सत्ता से होते हैं। इनको कर्म और सुकर्म-कुकर्म भी कहा जाता है। परोपकार के लिए परिश्रम करते यदि बीच ही में प्राणान्त हो जाये तो भी वह मनुष्य पुण्य-पुञ्ज उपार्जन कर लेता है। ऐसे जन को पाप कदापि नहीं लगता।

www.thearyasamaj.org

भाग्य और पुरुषार्थ

डॉ. वेदप्रकाश

१. भाग्य- मनुष्य के पूर्व कर्मों का फल ही प्रारब्ध या भाग्य कहाता है। पूर्व के कर्मों का फल परिवर्तित नहीं किया जा सकता। उनका फल तो भोगना ही पड़ता है।

२. पुरुषार्थ- मनुष्य द्वारा आलस्यविहीन होकर अपने तन, मन, धन, वाणी तथा अन्य मनुष्यों और प्राणियों की सहायता से उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए जो कर्म किये जाते हैं, वे पुरुषार्थ कहाते हैं।

पुरुषार्थ और भाग्य में बड़ा कौन?-

पुरुषार्थ प्रारब्ध या भाग्य से बड़ा है, क्योंकि मनुष्य के पुरुषार्थ (कर्मों) से ही प्रारब्ध या भाग्य बनता है। अत: पुरुषार्थ सुधरने से प्रारब्ध सुधरता है और पुरुषार्थ बिगड़ने से प्रारब्ध भी बिगड़ जाता है।

अनेक मनुष्य अपने पुरुषार्थ को छोड़कर भाग्य के सहारे बैठे सुख की आशा करते रहते हैं, जिसके फलस्वरूप मे विद्या, धन ऐश्वर्य, कीर्ति और सुख को प्राप्त नहीं कर पाते।

पुरुषार्थहीन की सहायता कोई नहीं करता, किन्तु पुरुषार्थी की सहायता सज्जनों के साथ-साथ परमेश्वर भी करता है। परमेश्वर आलसी मनुष्यों पर नहीं, वरन् पुरुषार्थी मनुष्यों पर ही कृपा करता है।

इसलिए जीवन में विद्या, धन, ऐश्वर्य, सुख, कीर्ति, आदि चाहनेवाले मनुष्य को दिन-रात पुरुषार्थ करना चाहिये। पूर्व के कर्मों के फल को तो रोका नहीं जा सकता, किन्तु मनुष्य अपने वर्तमान कर्मों को तो श्रेष्ठ बना ही सकता है। वर्तमान के श्रेष्ठ कर्मों का फल भविष्य में सुख के रूप में प्राप्त होगा। अत: भाव-जीवन में सुख पाने के लिए मनुष्य को परिश्रमपूर्वक सदैव शुभ कर्मों को ही करना चाहिये।

यहाँ हमें वेद का यह उपदेश सदैव स्मरण रखना चाहिए-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छ समा:।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

-(यजुर्वेद ४०/१२)

अर्थ- हे मनुष्य! तू इस संसार में धर्मयुक्त, वेदोक्त कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्षों तक जीने की इच्छा कर। इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म में प्रवर्तमान तुझ मनुष्य में अधर्मयुक्त अवैदिक काम्य कर्म लिप्त नही होते, अर्थात् मनुष्य कर्म-बन्धन में नहीं बँधता। इसके अतिरिक्त भव-बन्धन से छूटने का अन्य कोई उपाय नहीं है।।

जीवन में सुख आधार केवल पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ के बिना प्राप्त धन से आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। ऐसे धन से दुर्गुणो की उत्पत्ति और वृद्धि होती है, जबकि परिश्रमपूर्वक प्राप्त धन से आनन्द प्राप्त होता है।

कर्महीन और आलसी बनकर जीने में सुख नहीं मिलता। छल-कपट, अन्याय-अन्याय-अत्याचार और दुराचार से प्राप्त धन में भी सुख नहीं होता। परिक्षमपूर्वक शुभ कर्मों को करने से ही सुख प्राप्त होता है। अत: हमें सदैव शुभ कर्म ही करते रहना चाहिये।

दान

दान का अर्थ-

हम संसार के कल्याण हेतु जो कुछ भी देते हैं, वह दान कहाता है, अर्थात् संसार के कल्याण हेतु तन से सेवा करना, मन से दूसरों के कल्याण की कामना करना और धन, भोजन, वस्त्रादि से संसार का कल्याण करना ही दान है।

दान के प्रकार-

दान दो प्रकार का होता है- १. श्रेष्ठ दान और २. निकृष्ट दान।

१. श्रेष्ठ दान- जो दान संसार के उपकार हेतु दिया जाता है, उसे श्रेष्ठ दान कहते है। भारतवर्ष में श्रेष्ठ दान करने की प्राचीन और वैदिक परम्परा है, तथा-

१) कुछ लोग निर्धनों को धन, अन्न, वस्त्रादि का दान देते हैं। २) कुछ लोग विद्वानो को धन-वस्त्र और सोना-चाँदी, आदि का दान देते हैं। ३) कुछ लोग मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, आदि में जाकर देते हैं। ४. कुछ लोग बाढ़ भूकम्प, अकाल, आदि विपत्तियों में पड़े लोगों के लिए अन्न, वस्त्र, धन, आदि का दान देते है। ५) कुछ विद्वान् लोग अपने शिष्यों और अन्य लोगों को विद्या का दान देते हैं। ६) कुछ लोग कन्या के विवाह के अवसर पर तथा कुछ लोग किसी की मृत्यु के समय गोदान देते हैं। ७) कुछ लोग हवन-सत्संग, आदि धार्मिक अवसरों पर धर्म-प्रचार हेतु धन का दान देते हैं।

इस प्रकार के दान सदैव कल्याणकारी होते हैं। अत: ऐसे दान अवश्य करने चाहियें।

२. निकृष्ट दान- जो दान अज्ञान और अन्धविश्वास में फँसकर दिया जाता है, उसे निकृष्ट दान कहते हैं, यथा-

१) कुछ लोग नदियों में रुपये -पैसे डालते हैं। २) कुछ लोग कर्महीन हट्टे-कट्टे मुसटण्डों को अन्न, वस्त्र और धन का दान देते हैं। ३) कुछ लोग मूर्तियों के निर्माण हेतु धन का दान देते हैं। ४) कुछ लोग तथाकथित तीर्थ-स्थलों पर जाकर पाखण्डियों को दान देते हैं। ५) कुछ लोग पाखण्डी गुरुओं के आश्रमों में दान देते हैं। ६. कुछ लोग भगवती-जागरण, आदि में दान देते हैं। ७. कुछ लोग काँवर लानेवाले मूढ़ जनों के लिए भोजन, आदि का दान करते हैं।

इस प्रकार के सभी दान व्यर्थ हैं, क्योंकि इनसे न तो दीन-दुखियों की सहायता होती है, न समाज और राष्ट्र का हित होता है, न धर्म का प्रचार होता है और न ही ज्ञान-विज्ञान तथा शिक्षा-विद्या की वृद्धि होती है। ऐसे दान से तो समाज में अकर्मण्यता, अन्धविश्वास, पाखण्ड, अविद्या और दु:ख की वृद्धि होती है। अत: ऐसा दान कभी नहीं देना चाहिये।

दान कहाँ देवें?-

शिक्षा-विद्या की वृद्धि हेतु विद्यालय-गुरुकुलों में; रोग और दु:ख-निवारण हेतु चिकित्सालयों में; योग-साधना और ईश्वर-उपासना हेतु: धर्म-प्रचार एवं सेवा हेतु वानप्रस्थ संन्यास आश्रमो में, वृद्धों की सेवा-सुश्रूषा हेतु वृद्धाश्रमों में; अनाथों की सेवा हेतु अनाथालयों में; दीन-दुखियों की सेवा में; बाढ, भूकम्प, अकाल, युद्ध, आदि विपत्तियों में

www.thearyasamaj.org

सभी के लिए तथा सांसारिक कल्याण के अन्य सभी कार्यों में तन-मन-धन, विद्या, आदि का पर्याप्त दान देना चाहिये। यद्यपि दूसरों के कल्याणार्थ ये सभी दान श्रेष्ठ हैं, तथापि संसार में सर्वोत्तम दान वेदों की विद्या का दान है, क्योंकि मनुष्य वेद-विद्या से विद्वान् होकर स्वयं भी सुखी रहता है तथा संसार में सर्वत्र विद्या और सुख फैलाता है।

दुर्घटना, बाढ़ भूकम्प, अकाल, युद्ध, महामारी, आदि विपत्तियों को छोड़कर संसार में दु:ख का मूल कारण अज्ञान और अविद्या हैं। अज्ञान और अविद्या को ज्ञान और विद्या के दान द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। वेद का ज्ञान ही संसार में सर्वोत्तम ज्ञान और विद्या हैं। अत: सभी बुद्धिमान् और दानी मनुष्यों को संसार में वेद-ज्ञान को फैलाने में पर्याप्त दान देना चाहिये।

दान का फल-

संसार के कल्याण हेतु दान देने का फल यह होता है कि संसार में फैले अज्ञान, अविद्या और दु:ख समाप्त होकर ज्ञान, विद्या और सुखों की वृद्धि होती है! संसार के कल्याणार्थ अपनी पवित्र आय में से दान देने पर दानी को किसी प्रकार की हानि या अभाव नहीं होता। दयालु परमेश्वर उसपर दया की वर्षा करके उसे और भी अधिक धनवान् बना देता है, उसके दु:ख समाप्त हो जाते है, उसके सुख और बढ़ जाते हैं, संसार में उसका यश बढ़ता जाता है तथा शत्रु भी उसकी प्रशंसा किया करते हैं।

इसके विपरीत जो मनुष्य छल, कपट, अन्याय, अत्याचार, घूस, चोरी, हिंसा, आदि पापकर्मों से धन कमाते हैं और उसमें से कुछ भाग दान कर देते हैं, तो उस दान का फल यह होता है कि समाज का कुछ हित तो होता है, परन्तु ऐसे दानी के दु:ख दूर नहीं होते और उसका यश भी नहीं बढ़ता, क्योंकि पाप का धन पापी को सदैव विनाश की ओर ही ले जाता है।

दान से भारतवर्षोन्नति-

भारतवर्ष में आज पर्याप्त निर्धनता, दु:ख, अशिक्षा, अविद्या, रोग, आदि व्याप्त हैं। इन्हें केवल शासन पूर्णत: समाप्त नहीं कर सकता। हाँ, यदि धनवान् और देशप्रेमी मनुष्य चाहें तो इन सबको बहुत शीघ्र ही समाप्त किया जा सकता है। यदि भारतवर्ष के सभी धनवान् मनुष्य अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार, पर्याप्त धन व्यय कर दें, तो कुछ ही दिनों में देश से निर्धनता, अशिक्षा, अविद्या, रोग, आदि पूर्णत: समाप्त हो जाएँगे।

यदि सभी भारतवासी यह संकल्प करें कि हमें स्वराष्ट्र को सभी भाँति सुखी बनाना है, तो यह कार्य बहुत सरल हो जाए। सभी देशवासी उत्सवों, प्रीति-भोज, पर्व-त्यौहारों, नव-वर्ष, आदि अवसरों पर होनेवाले अपने अनावश्यक व्यय बन्द कर दें और वह धन राष्ट्र-कल्याण हेतु दान करें।

इसी प्रकार यदि प्रत्येक भारतवासी प्रतिदिन १ रुपया भी राष्ट्र-कल्याण हेतु जमा करे तो शीघ्र ही अरबों-खरबों रुपये इकट्ठे हो जाएँ। इसी प्रकार मांसाहार, मदिरापान, धूम्रपान, गुटखा, व्यभिचार, आदि पर व्यय किये जानेवाले धन को भारतवर्षोन्नति हेतु प्राप्त कर लिया जाए। इस सम्पूर्ण धन को भारतवर्ष से निर्धनता, दु:ख, अशिक्षा-अविद्या, रोग, आदि को समाप्त करने पर व्यय किया जाना चाहिये।

आर्य पुरोहित सभा मुम्बई का १३ वॉ वार्षिकोत्सव संपन्न

आर्य पुरोहित सभा मुम्बई का १३ वॉ वार्षिकोत्सव दिनांक २५.०२.२०१७ को एक दिवसीय कार्यक्रम योग, प्राणयाम, ध्यान, सुझाव, उपचार तथा २१ कुण्डीय महायज्ञ एवं विराट भक्ति सत्संग समारोह बड़े ही हर्षोल्लास के साथ सारस्वत कालोनी मैदान सान्तक्रुज (प.) में मनाया गया।

इस अवसर पर प्रथम सत्र के अन्तर्गत योग, प्राणयाम्, ध्यान, सुझाव, उपचार आयुर्वेद के माध्यम से लगभग ५०० लोगों ने सोत्साह भाग लिया। योग का समुचित मार्गदर्शन योगार्थियों को मिला। आयुर्वेद के विशेषज्ञों डा. द्वारा रोगियों को नि:शुल्क परामर्श प्राप्त हुआ। मधुमेह शिविर के द्वारा लगभग २०० लोगों ने चेकअप करवाया। कार्यक्रम के द्वितीय सत्र १० से १ बजे तक स्वच्छ तन, संस्कारित मन एवं सुन्दर वतन विषय पर विभिन्न प्रतियोगिताएं जैसे भाषण, चित्रकला, भजन, प्रश्नात्तरी, कविता पाठ इत्यादि में लगभग ५० बच्चों ने अत्योत्साहित होकर भाग लिया। विजयी प्रतिभागियों को प्रमाणपत्र, मेडल व उपहार भेंट किये गये।

महोत्सव का तृतीय सत्र ३ से ८ बजे तक चला जिसमें २१ कुण्डीय पर्यावरण शुद्धि, सुख-शान्ति महायज्ञ का आयोजन हुआ जिसके ब्रह्मा डा. सोमदेव शास्त्री थे यज्ञ में लगभग २०० यजमानों ने भाग लिया।

तदनन्तर अन्तर्राष्ट्रीय प्रवक्ता **डा. वागीश शर्मा** प्राचार्य आर्ष गुरुकल एटा के प्रेरणादायक, प्रभावोत्पादक, ज्ञानवर्धक, सारगर्भित प्रवचन देते कहा परिवारों में संस्कारों को स्थापित करने में आर्य पुरोहित की मुख्य भूमिका रहती है।

तत्पश्चात् विशेष आमन्त्रित अतिथियों एवं अग्निहोत्री परिवारों का सम्मान आर्य पुरोहित सभा के पदाधिकारियो पं. विनोद कुमार शास्त्री, पं. नरेन्द्र शास्त्री, पं. नचिकेता शास्त्री, पं. विक्रम शर्मा पं. धर्मधर आर्य आदि ने किया।

इस सत्र का संचालन पं. प्रभारंजन पाठक (अध्यक्ष वैदिक दर्शन प्रतिष्ठान) मुम्बई ने किया।

आर्य पुरोहित सभा मुम्बई के प्रधान पं. नामदेव आर्य ने धन्यवाद ज्ञापन किया और जयघोष के साथ समारोह सम्पन्न हुआ। सभी ने प्रीतिभोज का आनन्द लिया।

निवेदक- **नरेन्द्र शास्त्री**
(महामन्त्री)

www.thearyasamaj.org

ईर्ष्या और वैर की अग्नि बुझाओ!

महात्मा आनन्दस्वामी सरस्वती

बहुत समय पहले की बात है कि मथुरा में राजा बाबू नाम के एक सेठ रहते थे। धर्म की ओर उनकी बहुत रुचि थी। कितने ही मन्दिर उन्होंने बनवाये। एक पाठशाला बनवाई, जिसमें विद्वान् संन्यासी पढ़ते थे।

राजा बाबू का एक और सेठ लक्ष्मीचन्द से झगड़ा था, जो ज़मीन के सम्बन्ध में था। झगड़ा बढ़ते-बढ़ते न्यायालय में पहुँचा। अभियोग चलने लगा। कई वर्ष अभियोग चलता रहा। राजा बाबू अभियोगों को भी लड़ते थे और अपने घर का काम भी करते थे। उनकी बनवाई हुई पाठशाला में प्रत्येक रात्रि को कथा होती थी। राजा बाबू सर्वदा उसे सुनने जाते। कथा सुनते-सुनते उनको संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया। अपने गुरु से पूछकर वे पाठाशाला में रहने लगे। एक कमरे में पड़े रहते। खाना घर से आ जाता, वे खा लेते और जाप करते रहते। बहुत समय बीत गया। एक दिन उन्होंने अपने गुरु से कहा- ''यदि आपकी कृपा हो तो संन्यास ले लूँ?''

गुरु ने कहा- ''नहीं राजा बाबू! अभी तुम संन्यास के योग्य नहीं हुए।''

राजा बाबू ने सोचा- 'मै घर पर नहीं जाता, परन्तु मेरी रोटी तो घर से आती है। अब घर से रोटी नही मँगाऊँगा। यहीं एक नौकर रख लूँगा। वही बना दिया करेगा।' ऐसा ही किया उन्होंने। और फिर एक दिन यह सोचकर कि अब तो घर से कोई सम्बन्ध नहीं, वे फिर बोले- ''गुरु महाराज! अब यदि संन्यास ले लूँ तो?''

गुरु ने कहा- ''नहीं, अभी समय नहीं आया।''

राजा बाबू ने सोचा- 'मैं अभी नौकर से रोटी बनवाता हूँ। इसीलिए गुरुजी नहीं मानते। यह भी छोड़ दूँड़ दूँगा। भिक्षा माँगकर खाऊँगा और आराम की सब वस्तुएँ भी छोड़ दूँगा।' तब ऐसा ही किया उसने। सुबह के समय नगर में जाता, भिक्षा माँग करके लाता और सारा दिन आत्म-चिन्तन में मस्त होकर बैठा रहता।

पर्याप्त समय बीत गया। फिर प्रार्थना की गुरु से- ''गुरुजी, मुझे संन्यास दे दीजिए।''

गुरु ने सोचकर कहा- ''अभी नहीं राजा बाबू!''

राजा बाबू आश्चर्यचकित कि अब क्या त्रुटि रह गई? सोचकर देखा और फिर अपने-आपको कहा-'मैं सभी जगह माँगने गया हूँ परन्तु सेठ लक्ष्मीचन्द के यहाँ माँगने नहीं गया। इसलिए शत्रुता की पुरानी भावना अब भी मेरे हृदय में बसी हुई है। इस भावना को छोड़ देना होगा।

दूसरे दिन प्रात:काल ही सेठ लक्ष्मीचन्द के मकान पर पहुँच गया। जाकर अलख जगाई- ''भगवान् के नाम पर भिक्षा दो!''

सेठ लक्ष्मीचन्द के नौकरों ने राजा बाबू को देखा तो दौड़े-दौड़े सेठ के पास गए। हाँपते हुए बोले- ''सेठजी ! राजा बाबू आपके यहाँ भीख माँगने आया है!''

लक्ष्मीचन्द आश्चर्य से बोला- ''यह कैसे हो सकता है? तुम्हें भ्रम हुआ है। कोई और होगा वह।''

नौकरों ने कहा- ''नहीं सेठजी ! यह राजा बाजू ही हैं। यदि आप कहें तो खाने में विष मिलाकर दे दें। सर्वदा के लिए झगड़ा समाप्त हो जायेगा।।''

लक्ष्मीचन्द उच्च स्वर में बोले- ''नहीं, मुझे देखने दो।'' मकान के द्वार पर आकर उन्होंने देखा कि राजा बाबू झोली पसारे खड़े हैं।

राजा बाबू ने उन्हें देखा और झोली फैलाकर बोले- ''सेठजी, भिक्षा!''

लक्ष्मीचन्द दौड़कर आगे बढ़े; चिल्लाकर बोले- ''राजा!'' राजा बाबू को अपनी छाती से लगा लिया उन्होंने। राजा बाबू ने झुककर उनके चरणों को स्पर्श किया। लक्ष्मीचन्द भी उनके पैरों में जा गिरे; बोले- ''राजा बाबू! ऊपर चलो, मेरे साथ बैठकर खाना खाओ।''

राजा बाबू बोले- ''नहीं सेठजी! मैं तो भिखारी बनकर आया हूँ। भीख माँगने आया हूँ। भीख डाल दो मेरी झोली में!''

उसी समय एक नौकर भागता हुआ आया; बोला-''सेठजी ! आपका तार। देखिये, इस तार में क्या लिखा है?''

लक्ष्मीचन्द ने खोलकर पढ़ा। तार राजा बाबू के बेटों का था। कलकता से आया था- ''हमारे पिता राजा बाबू का कहीं पता नहीं लगा। भूमि का झगड़ा अभी समाप्त नहीं हुआ, किन्तु-इस ज़मीन को लेकर हम क्या करेंगे? इस तार द्वारा हम भूमि से अपना अधिकार वापस लेते हैं। हमारे पिताजी नहीं हैं। आप कृपा करके हमारे पिता बनिए। हमें अपनी रक्षा में लीजिए।''

लक्ष्मीचन्द रोते हुए बोले- ''नहीं, ऐसा नहीं होगा। उन्हें लिखो कि भूमि उनकी है। मुझे नहीं चाहिए। मैं पिता बनकर उनकी रक्षा करूँगा। आज से वे केवल राजा बाबू के नहीं, मेरे भी बेटे हुए।''

पश्चात् राजा बाबू भिक्षा लेकर मुड़े तो देखा, सामने गुरुजी खड़े हैं- हाथ में गेरुवे वस्त्र लिये हुए। राजा बाबू को छाती से लगाकर बोले- ''अब तू संन्यासी बनने के योग्य हुआ राजा बाबू! अब ये कपड़े पहन!''

इस प्रकार जब तक मन के अन्दर घृणा है, तब तक गायत्री के जाप का क्या लाभ? गायत्री की उपासना यदि करनी है, तो मन से घृणा को निकाल दो। ईर्ष्या और वैर की भावना को दूर निकाल दो तो फिर देखो, आनन्द और सुख मिलता है या नहीं?

□□□

www.thearyasamaj.org

नित्यकर्म और मुक्ति विषय

स्वामी दयानन्द सरस्वती

चतुर्दश-उपदेश

प्रत्येक स्त्री और पुरुष के जो प्रतिदिन के कर्तव्य हैं, उनको आह्निक कर्म कहते हैं। धर्म-सम्बन्धी जो कर्तव्य हैं वे नित्यकर्म हैं। वे कर्म किसको, किस प्रकार और कहाँ तक करने चाहिएँ और किसको नहीं करने चाहिए, विषय पर विचार किया जाता है। बालक मूर्ख और छोटा होने के कारण माता-पिता के अधीन रहता है। ८ वर्ष की अवस्था तक उसमें धर्म-सम्बन्धी काम करने की योग्यता नहीं होती, इसलिए हमारे धर्मशास्त्रों ने व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) होने से पहले बालकों के लिए नित्यकर्म का विधान नहीं किया है। इस प्रकार वर्ण, आश्रम, विद्या, आयु और शारीरिक बल इत्यादि के अनुसार शास्त्रों ने नित्यकर्म की व्यवस्था की है। धर्मानुष्ठान के सम्बन्ध में नित्यकर्म निम्नलिखित है।

१. ब्रह्मयज्ञ- जो वेदों के पठन-पाठन द्वारा होता है। 'ब्रह्म' शब्द के अर्थ विद्या, वेद और परमात्मा तीनों के हैं। 'यज्ञ' शब्द का अर्थ विचार है, इसलिए ब्रह्म के अर्थ वेदों का विचार या परमात्मा का विचार हुआ। ब्रह्मयज्ञ के ठीक अर्थों को मन में जगह देकर यह स्पष्ट मालूम होता है। आजकल जिस रीति पर ब्रह्मयज्ञ किया जाता है, वह निष्फल है और फिर यह आक्षेप मन में कभी स्थान न पावेगा कि आधुनिक ब्रह्मयज्ञ शास्त्र के अनुसार नहीं है।

२. देवयज्ञ- **''यदग्नौ हूयते स देवयज्ञः''** जो अग्नि में होम किया जाता है, वह देवयज्ञ है। कोई लोग देवयज्ञ का अभिप्राय देवताओं की पूजा समझते हैं, परन्तु ब्राह्मणग्रन्थों और मनुस्मृति के देखने से मालूम होता है कि इस देवयज्ञ का ठीक अभिप्राय होम अर्थात् अग्निहोत्र है। अग्नि दो प्रकार की है- जठराग्नि और भौतिकाग्नि। कोई लोग कहते हैं-

'होमैर्देवान् यथाविधि अर्चयेत्।' (द्र.-मनु. ३।८१) होम से विद्वानों का यथाविधि सत्कार करना चाहिए।

होम शब्द के पारिभाषिक अर्थ कभी-कभी दान और आदान के भी हो जाते हैं। फिर भी कोई मनुष्य किसी प्रकार मूर्तिपूजा को देवयज्ञ में शामिल नहीं कर सकता।

३. पितृयज्ञ- ''(यस्मिन्) पितृभ्यो ददाति स पितृयज्ञ।'' जिसमें पितरों को दिया जावे, अर्थात् उनकी सेवा की जावे, उसे पितृयज्ञ कहते हैं। यहाँ पर पितृशब्द के अर्थ पर विचार करना चाहिए।

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्म योऽनूचानः स नो महान्॥

सुनीति, धर्म, सचाई और सच्चरित्रता आदि गुणों से युक्त अत्यन्त सहिष्णु, महात्मा जो प्राचीन ऋषि हुए हैं उन्हीं को अपने तपोबल के प्रभाव से वसु, रुद्र और आदित्य आदि की पदवियाँ मिला करती थीं। ऐसे ऋषि सच्चे पितर होते थे और उनका आदर-सत्कार करना पितृयज्ञ कहलाता था। २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला वसु, ३६ वर्ष तक रुद्र, और ४८ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहनेवाला आदित्य कहलाता था। छान्दोग्य-उपनिषद् में प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल के लिए तीन सवन बतलाये गये हैं जो तीनों प्रकार के ब्रह्मचारियों से सम्बन्ध रखते हैं। इन सबके तात्पर्य पर विचार करने से मालूम होता है कि विद्या के द्वारा आत्मिक जन्म देनेवाला ही पिता कहलाता है और ऋषि मन्त्रद्रष्टा को कहते हैं।

आजकल पितृयज्ञ कहने से जो मृतकों का श्राद्ध और तर्पण समझा जाता है वह ठीक नहीं है, क्योंकि मनुजी ने भी कहा है कि श्रद्धा से जो काम किया जाता है उसे श्राद्ध कहते हैं और तृप्ति का नाम तर्पण है। इन सब अर्थो और प्रयोगों पर विचार करने से मालूम होता है कि आजकल जो देवयज्ञ और पितृयज्ञ की व्याख्या की जाती है, वह कवियों की अत्युक्ति ही है। भला सोचिए कि कवियों की अत्युक्ति से यथार्थ तत्त्व कैसे जाना जा सकता है? विद्या-सत्कार, अर्थात् ऋषि-सत्कार और पितृ-सत्कार अर्थात विद्वानों के सत्कार को पितृयज्ञ मानना चाहिए। श्रद्धा के बिना जो किया जाता है वह धर्म-कर्म, अर्थात् श्राद्ध नहीं होता मनुजी ने कहा-

पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकाञ्छठान्।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥१

पाखण्डी, वेदों की आज्ञा के विरुद्ध चलनेवाले, विडालवृत्तिवाले, हठी, बकवादी और बगुलाभक्त मनष्यों का वाणी से भी सत्कार नहीं करना चाहिए।

वेदविहित पितरों की सेवा-शूश्रूषा छोड़कर समुद्र, पहाड़, नदी और वृक्षों का तर्पण करना और इसे श्राद्ध मानना, भला पाखण्ड नहीं तो और क्या है? प्राचीन पद्धति ही यदि लेनी थी, तो ऋषियों की पद्धति स्वीकार करते।

४. भूतयज्ञ- ''यो भूतेभ्यः क्रियते स भूतयज्ञः।'' जो प्राणियों को भाग दिया जाता है, उसे भूतयज्ञ कहते हैं। इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है, साधारण प्राणियों का पालन करना भूतयज्ञ है।

५. अतिथि यज्ञ- मनु जी लिखते हैं-

अनित्या हि स्थितिर्यस्य सोऽतिथिः सद्भिरुच्यते।

जिसके आगमन की कोई नियत तिथि न हो और स्थिति भी जिसकी अनियत हो, वह अतिथि कहलाता है। अतिथियज्ञ का अधिकारी वही है, जो विद्वान् हो एवं जिसका आना, जाना और ठहरना अनियत हो, वह चाहे किसी वर्ण का हो (उसकी सेवा करना) यह एक श्रेष्ठ कर्म है।

अब पुनः ब्रह्मयज्ञ पर विचार करना चाहिए। इस यज्ञ के सम्बन्ध में सन्ध्योपासना अवश्य करनी चाहिए। इसके विषय में एक सन्ध्योपनिषद् है, इस पुस्तक में विशेष व्याख्या की गई है। उपासना का अधिकार यदि योग्यावस्था हो तो लड़के-लड़कियों को बराबर है। दिन और रात की सन्धि के समय में यह उपासना अवश्य करनी चाहिए। ऐसा सन्धि समय सायं-प्रातः दो समय आता है, तीन बार नहीं होता। इसलिए दोपहर की सन्ध्या कदापि नहीं हो सकती। सामब्राह्मण और यजुर्वेद का ब्राह्मण देख लीजिए-

www.thearyasamaj.org

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपासीत।

दिन और रात की सन्धि के समय सन्ध्योपासना करनी चाहिए।

उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायेत।

सूर्य के उदय और अस्त होने पर संध्या करनी चाहिए। इन प्रमाणों से केवल दो संध्या ही सिद्ध होती हैं। संध्योपासना में गायत्री महामन्त्र के अर्थ पर (विचार) करना चाहिए। **इस मन्त्र में सारे विश्व को उत्पन्न करनेवाले परमात्मा का जो उत्तम तेज है उसका ध्यान करने से बुद्धि की मलिनता दूर हो जाती है और धर्माचरण में श्रद्धा और योग्यता उत्पन्न होती है। दूसरे किसी मत में प्रार्थना के मन्त्रों में ऐसी गहराई और सचाई नहीं है।** ईसाई लोगों की प्रार्थना के मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है कि- ''हे परमेश्वर! हमको प्रतिदिन रोटी खाने को दे।'' इसकी अपेक्षा इस आर्यों के महामन्त्र का अर्थ कैसा गम्भीर है। आधुनिक समय में जो-जो मत निकलते हैं, उनकी प्रार्थना के मन्त्र इस महामन्त्र के सामने कैसे तुच्छ हैं, इसपर प्रत्येक बुद्धिमान् को विचार करना चाहिए। संध्योपासना सदा सायं-प्रात: इन दो कालों में ही करनी चाहिए। इन दोनों कालों में मनोवृत्ति की स्थिरता में प्राकृतिक सहायता मिलती है। सूतक में सन्ध्या अवश्य करनी चाहिए, अनध्याय नहीं करना चाहिए। इस विषय में मनुजी लिखते हैं-

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके।
न विरोधास्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ।।

वेद-पाठ, नित्यकर्म और होम-मन्त्रों में अनध्याय नहीं है।

नित्यकर्म का अभिप्राय यह है कि अपने मन का लक्ष्य परमेश्वर को बनाया जावे, इसलिए प्रत्येक कर्म की समाप्ति पर यह कहा जाता है कि मैं इस कर्म का या इसके फल को परमेश्वर के अर्पण करता हूँ।

यहाँ तक नित्यकर्म का विधा हुआ।

मुक्ति-विषय

अब आगे मुक्ति के विषय में थोड़ा-सा विचार किया जाता है। मुक्ति शब्द का अर्थ छूटना है। यहाँ प्रश्न होता है, किससे छूटना? उत्तर स्पष्ट है कि दु:ख, अर्थात् बन्धन से छूटना मुक्ति है। जहाँ बन्धन नहीं वहाँ मुक्ति भी नहीं। जीवात्मा बद्ध है, इसलिए इसको मुक्ति की आवश्यकता है। ईश्वर सदा मुक्त है अर्थात् बन्धन से पृथक् है, इसलिए उसको मुक्त- स्वभाव कहते हैं। मुक्ति का अधिकारी होना बड़ा ही कठिन काम है। मुक्ति की दशा में नित्य सुख का अनुभव होता है। आजकल तो लोग यह समझते हैं कि सस्ती भाजी की तरह मनमाने कामों से मुक्ति मिलती है, परन्तु यह मूर्खतापन की समझ है। मुक्ति के मनमाने चार भेद जो लोग बतलाते हैं वे ये हैं- सायुज्य, सारुप्य, सामीप्य और सालोक्य, ये सब कल्पित हैं। वेदादि शास्त्रों में मुक्ति के ये भेद कहीं नहीं लिखे। प्रत्युत उनमें एक ही प्रकार की मुक्ति बतलाई है। यजुर्वेद में लिखा है-

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेनि नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय।

''उस परमात्मा को जानकर ही मृत्यु को जीत सकते हैं, दूसरा और कोई मार्ग नहीं है।'' इससे स्पष्ट सिद्ध है कि मुक्ति का मार्ग एक है और वह केवल परमेश्वर का ज्ञान है। इसपर प्रश्न होगा कि वह परमेश्वर कैसा है?

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यश:।

''उस परमात्मा की कोई प्रतिमा (मूर्ति या पैमाना) नहीं है, जिसका कि यश बड़ा है।'' फिर तवल्कार और बृहदारण्यक उपनिषद् को भी देखना चाहिए, जिनमें बतलाया है कि जीवात्मा के भीतर भी वह परमात्मा व्यापक है तथा उसे वाणी, मन, आँख, कान और प्राणों को भी अपने-अपने कामों में लगानेवाला माना है और उसे एक तथा अद्वितीय माना है। इन सब प्रमाणों पर विचार करने से सिद्ध होता है कि परमेश्वर के ज्ञान के विना मुक्ति पाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। वह परमेश्वर अरूप, अनादि तथा अनन्त है। वही ब्रह्म सबसे बड़ा और सबका सहारा है। आजकल की मुक्ति तो यह समझी जाती है कि जीव और परमात्मा एक ही है, बस यह ज्ञान होना ही मुक्ति है। यह आजकल के वेदान्तियों का मत है, किन्तु यह सच्चा वेदान्त नहीं है और न वेदों का सिद्धान्त है। इस बात की पड़ताल करने पर कि षट् दर्शनों के प्रणेताओं की मुक्ति के विषय में क्या सम्मति है, इसका तत्व मालूम हो जाएगा। पहले जैमिनिकृत पूर्वमीमांसा में यह कहा है कि धर्म, अर्थात् यज्ञ से मुक्ति मिलती है और वहाँ **''यज्ञो वै विष्णु:''** इत्यादि शतपथब्राह्मण के प्रमाण भी दिये हैं। इसपर विचार कीजिए।

फिर कणाद मुनि ने वैशेषिक दर्शन में कहा है कि तत्त्वज्ञान से मुक्ति होती है। न्यायदर्शन के रचयिता गौतम ने अत्यन्त दु:ख- निवृत्ति को मुक्ति माना है। मिथ्याज्ञान के दूर होने से बुद्धि, वाक् और शरीर शुद्ध होते और इनकी शुद्धि से यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है, वही मुक्ति की अवस्था है। योगशास्त्र के कर्ता पतञ्जलि मानते हैं कि चित्तवृत्तियों का निरोध करने से शान्ति और ज्ञान प्राप्त होते हैं और इससे कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। सांख्यशास्त्र के प्रणेता महामुनि कपिल कहते हैं कि तीन प्रकार के दु:खों की (अत्यन्त) निवृत्ति होना ही परम पुरुषार्थ (मुक्ति) है। अब देखिए कि उत्तरमीमांसा अर्थात् वेदान्तदर्शन के रचयिता वादरायण (व्यास) क्या कहते हैं।

अविभागेन दृष्टत्वात्।।
चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमि:।।
अभावं बादरिराह द्येवम्।।
(भावं जैमिनिर्निर्विकल्पामननात्।।
द्वादशाहवदुभयविधं वादरायणोऽत:)

व्यास के मत से मुक्ति की दशा में अभाव और भाव दोनों रहते हैं। मुक्त जीवात्मा का परमेश्वर के साथ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध रहता है। दोनों एक अर्थात् जीवात्मा का अभाव कभी नहीं होता।

भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च ।।

परमेश्वर के ज्ञान, सामर्थ्य और आनन्द जीवात्मा को प्राप्त होते हैं।

ईश्वर का आनन्द असीम है, वैसा आनन्द मुक्त-जीवात्मा तो हो ही नहीं सकता। जीव-ब्रह्म में अभेद मानने से धर्मानुष्ठान के सब साधन योग्य, तप और उपासना आदि सब निष्फल हो जाएँगे, इसलिए परमात्मा और जीवात्मा को एक मानना ठीक नहीं है। व्यापक और व्याप्य, सेव्य और सेवक आदि सम्बन्ध ईश्वर और जीव में वर्तमान रहता है और यही सम्बन्ध जीवात्मा के जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारे का कारण होता है।

।। ओ३म् शान्ति: शान्ति: शान्ति: ।।

उपदेश मञ्जरी से साभार

www.thearyasamaj.org

ऋग्वेद-सूक्ति-सुधा

१. अग्निमीळे। १।१।१
मैं ज्ञानवान् तथा प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की स्तुति करता हूँ।

२. अग्नि: पूर्वेभिर्ऋ षिभिरीड्यो:। १।१।२
प्रकाशस्वरूप परमेश्वर श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा भी उपासनीय है।

३. स देवाँ एह वक्षति।- १।१।२
वह प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ही इस ब्रह्माण्ड में सूर्य-चन्द्र आदि दिव्य पदार्थो को धारण करता है।

४. अग्निना रयिमश्नवत्- १।१।३
मनुष्य प्रकाशस्वरूप परमेश्वर से ऐश्वर्य प्राप्त करता है। अथवा मनुष्य पुरुषार्थ के द्वारा धन प्राप्त करे, धन कमाये।

५. देवो देवेभिरा गमत्। १।१।५
प्रकाशस्वरूप परमेश्वर विद्वानों के द्वारा प्राप्त किया जाता है। अथवा आनन्दप्रद परमेश्वर दिव्य गुणों द्वारा प्राप्त किया जाता है। अथवा सर्वप्रकाशक और आनन्दप्रद परमेश्वर दिव्यताओं के साथ हमें प्राप्त हो।

६. दाषुशे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।-१।१।६
हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू आत्मसमर्पण करनेवाले का निश्चय ही कल्याण करेगा।

७ नमो भरन्त एमसि।- १।१।७
प्रकाशस्वरूप प्रभो! हम नमस्कार की भेंट लेकर तेरे समीप चले आ रहे हैं।

८ अग्ने सूपायनो भव।- १।१।६
हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! तू हमें सरलता से प्राप्त हो।

९. सचस्वा न: स्वस्तये।- १।१।९
हे प्रभो! आप हमें इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण के साथ संयुक्त कीजिए।

१०. जरन्ते त्वामच्छा जरितार:।- १।२।२
हे शक्तिशाली प्रभो! उपासक लोग तेरी खूब स्तुति करते हैं।

११. इन्द्रा याहि चित्रभानो।- १।३।४
हे ऐश्वर्यशालिन्! अद्भुत दीप्तियुक्त। तू हमें प्राप्त हो, हमारे हृदय मन्दिर में साक्षात् दर्शन दे।

१२. पावका: न सरस्वती।-१।३।१०
स्वरस्वती=विद्या, ज्ञानशक्ति हमें पवित्र करनेवाली है।

१३. यज्ञं वष्टु धियावसु:।- १।३।१०
बुद्धिमान् मनुष्य शुभकर्म करने की ही कामना करे।

१४. यज्ञं दधे सरस्वती।-१।३।११
स्वरस्वती= विद्या यज्ञ को धारण करती है, अर्थात् लोगों को उत्तम कर्मों में नियुक्त करती है। अथवा वेदवाणी मनुष्यों में यज्ञ की भावना को भरती है।

१५. मा नो अति स्य आ गहि।-१।४।३
हे परमैश्वर्यशाली प्रभो! तू हमारा त्याग मत कर, हमारी उपेक्षा मत कर अपितु, हमारे पास आ, हमें प्राप्त हो।

१६. पृच्छा बिपश्चितम्-।१।४।४
यथार्थ, सत्य कहनेवाले ज्ञानी मनुष्य के पास जाकर उससे पूछ, अपने सन्देह की निवृत्ति कर।

१७. निवो निरन्यतश्चिदारत्।-१।४।५
निन्दक लोग दूर देश में चले जाएँ।

१८.उत न: सुभगां अरिर्वोचेयु:।-१।४।५
हमारे शत्रु भी हमें सौभाग्यशाली कहें।

१९. स्यामेदिद्रस्य शर्मणि।-१।४।६
हम सदा परमेश्वर की ही शरण में रहें।

२०. प्रावो वाजेषु वाजिनम्।- १।४।८
हे सैकड़ो कर्म करनेवाले इन्द्र! तू संग्रामों, जीवन संघर्षो में वीर पुरुषों की रक्षा कर।

२१. तस्मा इन्द्राय गायत।- १।४।१०
उस ऐश्वर्यशाली प्रभू का स्तुति-गान करो।

२२. इन्द्रमभि प्र गायत सखाय:।- १।५।१
हे मित्रो! प्रभु की स्तुति करो, प्रभू के गीत गाओ।

२३. इन्द्रं सोमे सचा सुते।- १।५।२
ब्रह्मानन्दरस में तृप्त होकर परमेश्वर की स्तुति करो।

२४. त्वां वर्धन्तु नो गिर:।-१।५।८
हे परमेश्वर! हमारी वाणियां तुझे बढ़ाएँ, तेरी ही महिमा के गीत गाएँ।

२५. मा नो मर्ता अभि द्रुहन्।-१।५।१०
शत्रुलोग हमसे द्रोह=ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध न करें।

२६. ईशानो यवया वषम्।- १।५।१०
तू शक्तिशाली बनकर शत्रुओं के शस्त्र को अथवा हिंसा=घात-पात को परे हटा दे।

२७. रोचन्ते रोचना दिवि।- १।६।१
चमकनेवाले आकाश में चमकते हैं।

२८. इन्द्र वाजेषु नोऽव।- १।७।४
हे परमेश्वर! जीवन-संग्राम में तू हमारी रक्षा कर।

२९. इन्द्रमर्मे हवामहे।- १।७।५
हम छोटे संघर्षो में भी परमैश्वर्यशाली परमेश्वर का आह्वान करते हैं।

३०. सत्रादावन्नपा वृधि।- १।७।६
हे अभीष्टफलदात:! तू हमारे लिए शान और ऐश्वर्य के द्वार खोल दे, जिससे हमें ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त हो।

३१. अस्माकमस्तु केवल:।- १।७।१०
हे परमेश्वर! हमारे तो केवल आप ही हो। हमें केवल आप प्रभु का ही सहारा हो। May we trust in God and do the right.

३२. जयेम सं युधि स्पृध: १।८।३
हम युद्ध में स्पर्धा करनेवालों को जीतें। अथवा हम युद्ध में शत्रुओं के हृदयों को जीते।

www.thearyasamaj.org

''वेदों में यज्ञ-चिकित्सा विज्ञान''

ईश्वर ने वेदों में धर्म, कला, साहित्य आदि विधाओं के साथ साथ चिकित्सा ज्ञान भी यत्र तत्र सर्वत्र मिलता है चिकित्सा पद्धति में जहां आयुर्वेद में योग, खान-पान, भक्ष्य अभक्ष्य के बारे में बताया है वहीं यज्ञ - चिकित्सा भी मानव मात्र के लिए कितनी लाभदायक हो सकती है, यह भी बता याहै।

अथर्ववेद एवं यजुर्वेद में ऐसे अनेक मन्त्र पाए गये हैं जो हमारे पर्यावरण को शुद्ध करने तथा हमें निरोग बनाए रखने के लिए हमें अवगत कराते हैं। सर्वप्रथम यज्ञ सुगन्धि प्रदायक है यह वेद बताता है यजुर्वेद का महामृत्युन्जय मन्त्र का भावार्थ यही है-**ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्...**

वेदों में यह भी बताया गया है कि यज्ञ विज्ञान से वर्षा भी कराई जा सकती है। यजुर्वेद (१/१६) में यज्ञ को ''वर्ष वृद्धम्'' कहा गया है अर्थात वर्षा को बढाने वाला। अथर्ववेद में भी कहा है- **तन्तवा यज्ञं बहुधा विसृष्टा** (४/१५/५) अर्थात जब वर्षा कराने की आवश्यकता हो तो बहुत से यज्ञ विविध प्रकार से करने चाहिए। यही नहीं वृष्टि विज्ञान की विस्तृत व वैज्ञानिक जानकारी भी दी गयी है। ऋग्वेद (१/७९/२) में कहा है-

आ ते सुपर्णा अभिनन्तं एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम्।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ।।

अर्थात हे अग्नि जब तेरी उत्तम शक्तियां सब ओर से मेघ पर आघात करती हैं तब काले रंग का बरसने वाला बादल नीचे की ओर झुकता है और बिजलियों से युक्त हो जाता है फिर वह मेघ गरजता है और गिरता है। यजुर्वेद के२२/२२ मन्त्र में तो यहां तक कह दिया-''**निकामे निकामे न पर्जन्यो वर्षतु।**'' अर्थात जब जब हम इच्छा करें तब तब मेघ बरसें। यही नहीं जिन दो तत्वों से बादलों का निर्माण होता है वे ओषजन (Oxygen) और उद्रजन (Hydrogen) तत्व भी वेद में मित्र एवं वरूण नाम से लिखे गये हैं ''मित्रावरूणौ त्वा वृष्ट्यावताम्-यजुर्वेद- २/१६ अर्थात हे मित्र एवं वरूण आप दोनों वृष्टि से हमारी रक्षा करो। वेदों में यज्ञ द्वारावृ ष्टिका मात्र उल्लेख ही नहीं किया गया है किन्तु उसकी पूरी वैज्ञानिक प्रक्रिया (scientific procedure) भी बताई गयी है कि उक्त दोनों तत्व यज्ञ द्वारा प्राप्त हो सकते हैं तथा वायुमण्डल में उनकी अभिवृद्धि की जासकतीहै- **यजानो मित्रावरूणा यजा देवां ऋतं बृहत्।।** यजु ३३/३ अर्थात जल के भण्डार के निर्माण के लिए हे अग्नि तुम मित्र और वरूण के लिए संगत करो। आगे कहा है ''**घृतेन द्यावा पृथिवी पूर्येथाम्** यजु. ५/२८ अर्थात यज्ञ द्वारा घृत से पृथ्वी से द्युलोक के मध्य के अन्तरिक्ष को भरदो।

इसी प्रकार कृषि में भी यज्ञ की क्या भूमिका हो सकती है यह भी वेदों में वर्णित है। वेदों में भूमि को संस्कारित करने का सफल उपाय यज्ञ बताया है- **पृथ्वीचमेयज्ञेनकल्पताम्** (यजु.१८/१२) अर्थात यज्ञ के माध्यम से पृथ्वी को सामर्थ्यवान बनाएं। जहां कृषि करनी है वहां नित्य यज्ञ करना चाहिए। ''**पृथ्वी भस्मना पृण**'' (यजुर्वेद६/२१) अर्थात पृथ्वी को यज्ञ भी भस्म से पूरित करना चाहिए। इसके साथ साथ बीज आदि बोते समय वेद मन्त्रों के पाठ का भी आदेश है। ''**वाजस्य तु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचा कराम हे।**'' इससे मन्त्र की ध्वनि का उस बीज परसंस्कार पडेगा और उससे पैदावार अच्छी व अधिक होगी।

क्षय रोग में भी यज्ञ बहुत लाभदायक होता है यह वेद में कह गया है

यं भेषजस्य गुल्गुलोः सरभिर्गन्धो अश्नुते
विष्षम्चस्तस्मात यक्ष्मा मृगाद अश्नुते इवेरते (अथर्वेद १९/३८)

अर्थात जिसके शरीर को रोगनाशक गूगल का उत्तम गंध व्यापता है, उसको राजक्ष्यमा (टी. बी) के रोग पीडा नहीं देते हैं। भावार्थ यह है कि यज्ञ से ऐसी व्याधियां दूर हो जाती हैं। फ्रांस के प्रो. टिलवर्ट कहते हैं, जलती हुई शक्कर के धुएं में वायु शुद्ध करने की बड़ी शक्ति होती है जिससे टी.बी. विष शीघ्र नष्ट होजा ताहै। डा. फुन्दन लाल (जबलपुर) ने अपनी पुस्तक 'यज्ञचिकित्सा' में यज्ञ द्वारा यक्ष्मा के रोग का पूर्ण निदान सप्रमाण बताया है।

दाह-चिकित्सा- दाह चिकित्सा को दूर करने को लिए भी मन्त्र आता है-

अगरूघन सार सल्लककर रूहनतनीर चन्दनैर्युक्तः
सर्जन सेन समेतो धूपो रूग्दाहकं हन्ति।।

अर्थात अगर, कपूर, लोबान, तगर, चन्दन और राल इनकी धूप देने से दाह शान्त हो जाता है नेत्र चिकित्सा-

शिग्रुपल्लव निर्यासः सुपिष्टस्ताम्र सम्पुटे
घृतेन धूपितो हन्ति शोथघर्षा श्रुवेदनः ।।

बवासीर चिकित्सा-

अश्वगन्धोऽथ निर्गुण्डी, बृहती पिप्लीफलम्
धूपोऽयं स्पर्श मात्रेण ह्यर्शसां शमने ह्यलम्।

अर्थात असगन्ध, निगुण्डी, बड़ी, कटेली, पीपल इन सबकी धूप से बवासीर की पीड़ा शान्त होती है।

कृमि चिकित्सा -

काकुभकुसुम विडङ्ग लाङ् गलि भल्लातंक तथोशीरम्
श्री वेष्टकसर्ज रसं चन्दन मथ कुष्ठ मष्टयं दद्यात्।।

विषज्वर चिकित्सा -

निम्ब पत्रं वचा कुष्ठं पथ्या सिद्धार्थकं घृतम्
विषम ज्वर नाशाय गुग्गुलुश्चेति धूपनम्।।

व्रण चिकित्सा -

निम्ब पत्र वचाहिङ् गस र्पिर्ल वण सर्ष पैः
धूपनं कृमिर क्षोध्नं व्रण कण्डूरू जा पहम्।।

उन्माद चिकित्सा -

इमं मेअग्ने पुरूषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालवीति
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदाऽनुन्मदितोऽमति।।

अथर्ववेद ६/१११/१

गण्डमाला चिकित्सा -

अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोपोच्छतु।। अथर्ववेद६/८३/१

(शेष पृष्ठ १५ देखें)

www.thearyasamaj.org

आर्य पथिक लेखराम

बलिदान दिवस ६ मार्च १८९७ की पुनित स्मृति में अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा लिखी गयी ''आर्य पथिक लेखराम'' की जीवनी से उद्धृत-

मुलतान में कॉलिज दल वालों की ओर से दूसरा आर्यसमाज खुला हुआ था। उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा के काम के विषय में कुछ भ्रम फैलाए थे। जिन्हें दूर करने पण्डित लेखराम गए थे। पण्डित लेखराम जी के मुकाबिले में उन लोगों ने भी व्याख्यान कराए जिनमें पण्डित लेखराम को अपशब्द ही न कहे गये प्रत्युत सिक्खों को भड़काने के लिये उन्हें गुरू निन्दक बतलाया गया। ऐसी अवस्था हो चुकी थी जब ४ मार्च को पण्डित लेखराम का उस जीवन में अन्तिम व्याख्यान हुआ। इसका आँखों देखा हाल एक सभ्य पुरूष ने, १८ वर्ष हुए, मुझे लिखकर भेजा था जिसे यहाँ उद्धृत करता हूँ-

पण्डित लेखराम जी के व्याखान कुप्यवड्गरी-गीरां और समाज मन्दिर में होते रहे। मैंने जाकर मुसलमानों से कहा कि उनसे मुबाहसा कर लो, वे कहने लगे कि यह बड़ा आलिम (विद्वान्) है हम उसकी बराबरी नहीं कर सकते।... एक दिन पण्डित जी ने लाला काशीराम वकील को, जो उस समय कल्चर्ड समाज के प्रधान थे, और चेतनानन्द जी (वकील) को समाज मन्दिरमें बुलवाया और उन से कहा-देखो, मिर्जा ने कैसी सख्त किताब लिखी है जो कि अनजानों को भ्रम में डाल सकती है। इसका उत्तर अवश्य देना चाहिए। आप लोग निरे लड़ाई-झगड़ो में पड़े हुए हो।

बहुत सी बातचीत हुई परन्तु कुछ परिणाम न निकला, क्योंकि उसी दिन उन लोगों ने भाईजगतसिंह काव्याख्यान कुप्यवड्गरी'' में कराया। वहाँ खालसों की उपस्थित खासी थी जिसमें लाला काशीराम और लाला चेतानन्द ने स्वयं कहा कि पंडित लेखराम कहता है कि गुरूनानक मुसलमान था इसलिए उसक ासमाज से कोई सम्बन्ध नहीं। मैं कुछ भाइयों समेत पडित जी के दर्शन को गया और व्याख्यान का सारा हाल उन्हें सुनाया। कुछ देर सोचने के पश्चात् बातचीत करते हुए पंडित जी के मुँह से निकला- कौन कहता है कि गुरू नानक मुसलमान थे? चलो कल यही व्याख्यान होगा।

नोटिस रात को ही लिखे गये। दूसरे दिन ४ बजे मध्याह्नोत्तर मैं समाज मन्दिर में गया। कई भाइयों के प्रश्नों के उत्तर देते रहे। फिर अजवायन मँगाई और साफ करके पानी के साथ खा ली और कहा ''रेल में यही मेरा जीवन है, यह बड़ी उत्तम औषधी है।'' सात बजते ही पंडित जी व्याख्यान के मैदान में पहुँचे। हम लोग भजन गाते थे और पण्डित जी पेन्सिल से व्याख्यान के लिए नोट लिख रहे थे। सिक्ख भड़काए हुए बड़े जोश से लाठियाँ लिये जमा थे। व्याख्यान आरम्भ हुआ। आर्यावर्त्त की अवनति के आरम्भ काल से वक्तृता को उठा कर परस्पर के द्वेष के बीज का खोज लगाते हुए बतलाया कि थोड़े से स्वार्थ ने आर्यावर्त्त का नाश कर दिया है। आपने बतलाया कि महमूद और अलाउद्दीन के विजय का साधक तुच्छ जीवों का स्वार्थ हीथा। बहुत से दृष्टान्तों के पश्चात् आपने विष्णु बाबा, मुन्शी इन्द्रमणि और स्वामी दयानन्द की हिम्मत का वर्णन किया जिन्होंने विरोधी आक्रमणों से आर्यजाति को बचाने का प्रयत्न किया। इसके पश्चात् अपने विषय को लेकर मिर्जा गुलाम अहमद की 'सत् वचन'' पुस्तक में से गुरू नानक के मुसलमान होने के विषय में लेख पढ़कर चारों और देखकर पूछा- ''यदि कोई खालसा बहादुर विद्यमान है तो इसका जवाब दे।'' फिर लाला काशीरामादि के उत्तर में ''ग्रन्थी फोबिया'' पुस्तक पेश करके पूछा कि जिन कल्चर्ड साहेबान ने गुरू नानक के विरूद्ध ऐसी पुस्तक छपवाई, क्या वे अब गुरू नानक के पवित्र आचरण पर लगाये कलंक को दूर कर सकते हैं? फिर बड़े प्रबल प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध किया कि गुरू नानक मुसलमान न थे।

व्याख्यान की समाप्ति पर लाला चेतानान्द जी के मुन्शी ने विघ्न डालने की नीयत से कहा- ''पंडित (लेखराम) जी ने (अपने व्याख्यान में) गुरू नानक को हिन्दू तो कहीं नहीं कहा।'' इस कुटिल नीति को भी पंडित लेखराम की हाज़िर जवाबी ने परास्त कर दिया। आर्य पथिक बोले -

''देखो बाबा, नानक देव स्वयं क्या कहते हैं ''हिन्दु अन्हा (अन्धा) तुर्कों काणा। दोहां विच्चों ज्ञानी स्याणा। बाबा नानक जी ज्ञानी अर्थात् आर्य थे, गुलाम हिन्दु न थे।''

पूष्ठ १४ से चालू....

गर्भ दोष निवारण -

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये
अग्निष्टं, ब्रह्मणा सह निष्क्रव्याद मनी नशत्। ऋग. १०/१६२

संक्रमण रोग नाशक -

यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः
एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये। अर्थ. ६/८५/३

पुत्रप्रदायक -

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनंकृतम्
तद् वै पुत्रस्य वेदेनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि।

शमी वृक्ष के उपर पीपल उग आया हो, उससे पुंसवन, पुत्रोत्पत्ति की जाती है। उस पीपल का प्रयोग निश्चित ही पुत्र का प्राप्त कराने वाला है। उसे उसके रस आदि को हवन से उठी हुई उसकी धूनी को स्त्रियों में पहुंचाते हैं।

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामन पत्य ताम्
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृत्र्मेह अर्थ. ४/११/६

अर्थात स्त्री का बांझ हो जाना, पुरूष दोष से सन्तान न होना, इस सबको हे अपामार्ग औषधी तेरे द्वारा हम दूर करते हैं।

शान्तिप्रदायक -

यतं यक्ष्मा अरून्धते नैनं शजथो अश्नुते
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते। अर्थ. १९/३८/१

उक्त मन्त्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदों में यज्ञ- चिकित्सा के मन्त्रों की भरमार है। जिन्हें पढ़कर हम विभिन्न रोगों के अनुसार यज्ञ सामग्री एवं जड़ी बूटियों (Herbals) को यज्ञ में प्रयोग कर के लाभान्वित हो सकते तथा विभिन्न रोगों से मुक्त हो सकते हैं।

संदीपआर्य
मन्त्री - आर्यसमाज सान्ताक्रुज
लिंकिंगरोड़, सांताक्रुज (प.) मुम्बई ४०००५४
९९६९०३७८३७

www.thearyasamaj.org

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-८ अंक-३ मुम्बई मार्च - २०१७ पृष्ठ-१६ मूल्य- रु. ९/-

फाल्गुन २०७२ (२०१७) Post Date : 25-03-2017 MCN/136/2016-2018 MAHRIL 06007/31/12/18-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५

प्रति,

टिकट

शहीद दिवस

शहीद दिवस दि.२३ मार्च १९३१ की पुनित स्मृति में उद् धृत शहीदों का ऐतिहासिक पत्र हम उचित सम्मान के साथ आपकी सेवा में रख रहे हैं

युद्ध बन्दी हैं .....

भारत की ब्रिटिश सरकार के सर्वोच्च अधिकारी वाइसराय ने एक विशेष अध्यादेश जारी कर के लाहौर षड् यन्त्र अभियोग की सुनवायी के लिए एक विशेष न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) स्थापित किया था जिसने ७ अक्तुबर १९३० को हमें फांसी का दण्ड सुनाया। हमारे विरूद्ध सब से बड़ा आरोप यह लगाया गया कि हमने सम्राट् जार्ज पंचम के विरूद्ध युद्ध किया है।

न्यायालय के इस निर्णय से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। पहली यह कि अंग्रेज जाति और भारतीय जनता के मध्य एक युद्ध चल रहा है। दूसरे यह कि हमने निश्चित रूप में इस युद्ध में भाग लिया है, अतः हम युद्धबन्दी हैं।

यद्यपि इनकी व्याख्या में बहुत सीमा तक अतिशयोक्ति से काम लिया गया है तथापि हम यह कहे बिना नहीं रहे सकते कि ऐसा करके हमें सम्मानित किया गया है। पहली बात के सम्बन्ध में हम तनिक विस्तार से प्रकाश डालना चाहते हैं। हम नहीं समझते कि प्रत्यक्ष रूप में ऐसी कोई लड़ाई छिड़ी हुई है। हम नहीं जानते कि युद्ध छिड़ने से न्यायालय का आशय क्या है? परन्तु हम इस व्याख्या को स्वीकार करते हैं और साथ ही इसे इसके ठीक सन्दर्भ में समझाना चाहते हैं।

युद्ध की स्थिति

हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूंजीपति और अंग्रेज या सर्वथा भारतीय ही हों उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। यदि शुद्ध भारतीय पूंजी पतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो तो भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि आपकी सरकार कुछ नेताओं या भारतीय समाज के मुखियों पर प्रभाव जमाने में सफल हो जाये, कुछ सुविधाएं मिल जायें अथवा समझौता हो जाये, इससे भी स्थिती नहीं बदल सकती तथा जनता पर इसका प्रभाव बहुत कम पड़ता है। हमें इस बात की चिन्ता नहीं कि युवकों को एक बार फिर धोखा दिया गया है और इस बात का भी भय नहीं है कि हमारे राजनीतिक नेता पथ भ्रष्ट हो गये हैं और वे समझौते की बातचीत में इन निरपराध बेघर और निराश्रित बलिदानियों को भूल गये हैं जिन्हें दुर्भाग्य से क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य समझा जाता है। हमारे राजनीतिक नेता उन्हें अपना शत्रु समझते हैं क्योंकि उनके विचार में वह हिंसा में विश्वास रखते हैं। हमारी वीरागंनाओं ने अपना सब कुछ बलिदान कर दिया है। उन्होंने अपने पतियों को बलिवेदी पर भेंट किया, भाई भेंट किये और जो कुछ भी उनके पास था, सब न्योछावर कर दिया। उन्होंने अपने आपको भी न्योछावर कर दिया। परन्तु आपकी सरकार उन्हें विद्रोही समझती है। आपके एजेण्ट भले ही झूठी कहानियां बनाकर उन्हें बदनाम कर दें और पार्टी की प्रसिद्धि को हानि पहुंचाने का प्रयास करें परन्तु यह युद्ध चलता रहेगा।

युद्ध के विभिन्न स्वरूप

हो सकता है कि यह लड़ाई भिन्न - भिन्न दशाओं में भिन्न भिन्न स्वरूप ग्रहण करे। किसी समय यह लड़ाई प्रकट रूप लेले, कभी गुप्त दशा में चलती रहे, कभी भयान करू पधारण कर ले, कभी किसान के स्तर पर युद्ध जारी रहे और कभी यह घटना इतनी भयानक हो जाये कि जीवन और मृत्यु की बाजी लग जाये। चाहे कोई भीप रिस्थिति हो, इसका प्रभाव आप पर पड़ेगा। यह आपकी इच्छा है कि आप जिस परिस्थिति को चाहें, चुन लें। परन्तु यह लड़ाई जारी रहेगी। इस में छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जायेगा। बहुत सम्भव है कि युद्ध भयंकर स्वरूप ग्रहण करले, पर निश्चय ही यह उस समय तक समाप्त नहीं होगा, जब तक कि समाज का वर्तमान ढांचा समाप्त नहीं हो जाता, प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन या क्रान्ति समाप्त नहीं हो जाती और मानवी सृष्टि में एक नवीन युग का सूत्र पात नहीं हो जाता।

अन्तिमयुद्ध

निकट भविष्य में अन्तिम युद्ध लड़ा जायेगा और युद्ध निर्णायक होगा। साम्राज्यवाद व पूंजीवाद कुछ दिनों के मेहमान हैं। यही वह लड़ाई है जिसमे हमने प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया है और हम अपने पर गर्व करते हैं कि इस युद्ध को न तो हमने प्रारम्भ किया है और न यह हमारे जीवन के साथ समाप्त ही होगा। हमारी सेवाएं इतिहास के उस अध्याय में लिखी जायेंगी जिसको यतीन्द्रनाथ दास और भगवती चरण के बलिदानों ने विशेष रूप में प्रकाशमान कर दिया है इनके बलिदान महान् हैं। जहाँ तक हमारे भाग्य का सम्बन्ध है हम जोरदार शब्दों में आपसे यह कहना चाहते है कि आपने फांसी पर लटकाने का निर्णय कर लिया है, आप ऐसा करेगें ही, आपके हाथों में शक्ति है और आपको अधिकार भी प्राप्त है। परन्तु इस प्रकार आप जिसकी लाठी उसकी भैंस वाला सिद्धान्त ही अपना रहे हैं और आप उस पर कटिबद्ध हैं। हमारे अभियोग की सुनवाई इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है किहमने कभी कोई प्रार्थना नहीं की और अब भी हम आपसे किसी प्रकार की दया की प्रार्थना नहीं करते। हम आपसे केवल यह प्रार्थना करना चाहते हैं कि आपकी सरकार के ही एक न्यायालय के निर्णय के अनुसार हमारे विरूद्ध 'युद्ध जारी रखने' का अभियान है। इस स्थिति में हम युद्ध बन्दी हैं, अतः इस आधार हम आपसे मांग करते हैं कि हमारे प्रति युद्धबन्दियों जैसा ही व्यवहार किया जाये हमें फांसी देने के बदले गोली से उड़ा दिया जाये।

अब यह सिद्ध करना आपका काम है कि आपका उस निर्णय में विश्वास है जो आपकी सरकार के न्यायालय ने किया है। आप अपने कार्य द्वारा इस बात का प्रमाण दीजिए। हम विनयपूर्वक आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप अपने सेना विभाग को आदेश दे दें कि हमें गोली से उड़ाने के लिए एक सैनिक टोली भेज दी जाये।

भवदीय

भगतसिंह, राजगुरू, सुखदेव